भारतीय स्त्रियों की योग्यता

प्रथम भाग

[अध्यात्मवादिनी, विदुषी, वीरा, धीरा, शासिका,
भारतीय स्त्रियों के जीवनचरितों का गुणानुसार
आलोचनात्मक सङ्कलन ।]

लेखक—

चन्द्रशेखर ओझा ।

प्रकाशक—

खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना)

१९२१.

१२६

प्रथम संस्करण

{ मूल्य ।।=)
~~जिल्द सहित~~ ।।।)

विषय सूची

आदिम वक्तव्य १—३
अध्यात्मज्ञान और विद्वत्ता ४—१६
आत्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता १७—५२
ग्रन्थनिर्माण और कवित्व ५३—६३
वीरता और शिक्षकता ६४—८५
प्रबन्धशक्ति और रणचातुर्य ८६—१०३
नीरव उपासना १०४—११२
स्वामिभक्ति ११३—१२०
वीरता और सतीत्वरक्षा १२१—१४८
भक्ति १४९—१७४
अन्तिम वक्तव्य १७५—१७६

नामावली

इन स्त्रियों की जिनके गुणों का विवेचन इस पुस्तक में कि

१ सूर्या ।
२ मैत्रेयी ।
३ भारती ।
४ सुकन्या ।
५ चञ्चलकुमारी ।
६ लक्ष्मी ।
७ मधुरवाणी ।
८ मारुला ।
९ मोरिका ।
१० विकटनितम्बा ।
११ विज्जका ।
१२ शिलाभट्टारिका ।
१३ जीजाबाई ।
१४ देवहूति ।
१५ मदालसा ।
१६ रानी कुंअर साहब ।
१७ मलयबाई देशाई ।
१८ अहल्याबाई ।
१९ उर्मिला ।
२० गान्धारी ।
२१ पन्नाधाय ।
२२ पद्मिनी ।
२३ महाराज पृथ्वीराज की रानी ।
२४ महारानी दुर्गावती ।
२५ सरदारबाई ।
२६ मीराबाई ।
२७ कर्मवतीबाई ।

आदिम वक्तव्य

यदि कोई वृद्ध आंखों के सामने आवे, यदि कोई किसी वृद्ध को देखे, उस के झुर्रीदार गाल, धसी आंखें और निकली हुई नाक देखे, यदि कोई उस की पतली और लंबी टांगें देखे, तो क्या वह दर्शक उस वृद्ध की बाल्यावस्था की सुन्दरता और कोमलता की कल्पना कर सकता है? क्या वह उस वृद्ध की बाल्यावस्थाके सुडौल रे का अनुमान कर सकता है? नहीं, असम्भव है; क्योंकि उस सूरती का, उस रूक्षता का मूल सुन्दरता और कोमलता है, यह न साधारणजन नहीं समझ सकते। शान्तिदायिनी पृथ्वी माता गर्भ में असंख्य ज्वालामुखी भरी हुई हैं, यह बात सब लोग नहीं नते। विश्वसौन्दर्यमयी माता राजराजेश्वरी ही कालिका रूप रण करती हैं, यह बात साधारण लोग नहीं समझ सकते। चाहे ई समझे या न समझे, चाहे कोई जाने या न जाने, पर बात ही है, सुन्दरता ही कुरूपता का मूल है, कोमलता ही रूक्षता के प में बदलती है, माता पृथ्वी ही ज्वालामुखियों को उत्पन्न किया ती है, माता राजराजेश्वरी तथा भगवती काली के गहरे सम्बन्ध कोई बड़ा से बड़ा वैज्ञानिक या दार्शनिक भी तोड़ नहीं सकता

यह परिवर्तन, ये उलट फेर, प्राकृतिक हैं. ये अदृश्य सत्ता के द्वारा परिचालित होते हैं।

आज संसार को भारतीय स्त्रियों की योग्यता के विषय में सन्देह है; आज भारतवासी स्त्रियों के प्रति क्रूर व्यवहार करनेवाले समझे जाते हैं, आज भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा देख कर कितनी ही विदेशवासिनी सहृदया महिलाओं के हृदय द्रवित हो जाते हैं; वे भारतीय स्त्रियों का उद्धार करने के लिए व्याकुल हो जाती हैं। कितनी ही सहानुभूति दिखाने के लिए भारत में दौड़ी दौड़ी उपस्थित होती हैं। यह सब क्या है? और क्यों है? बात वही है, जो हमने बतलायी है. आज भारतीय स्त्रियों की ही नहीं, किन्तु पुरुषों की भी दशा शोचनीय है। भीष्म, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, दधीचि, शिवि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, शङ्कर, रामानुज आदि पुरुषरत्न इसी भारत में उत्पन्न हुए थे, इस बात पर आज के भारतीयों को देखने से विश्वास नहीं हो सकता। स्त्रियों की भी यही दशा है, ये भी आज दुर्दशा भोग रही हैं, ये आज अज्ञान हैं, बुजदिल हैं, मूर्ख हैं, संसार में सजीव प्राणियों में इन का कोई स्थान नहीं। पर इस से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि भारतीय स्त्रियां सदा से ऐसी दुर्दशा भोग रही हैं; सृष्टि के आदि से ये अन्धकार में ही अपना जीवन बिता रही हैं, इन लोगों ने प्रकाश देखा ही नहीं। नहीं; बात ऐसी नहीं है। भारत की स्त्रियों ने भी संसार के इतिहास में अपने लिए अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है। जिन गुणों से योग्यता प्रमाणित होती है, जो काम योग्यतासूचक समझे जाते हैं, उन सभी गुणों में, उन सभी कार्यों

में, भारतीय स्त्रियों का हाथ रहा है। इतिहास के पृष्ठों पर भारतीय स्त्रियों के चित्र बड़े ही सुन्दर, बड़ेही उज्ज्वल और मनोमोहन हैं। इन्हीं, आज घर की चारदीवारी के भीतर लड़ने वाली और अपना मुंह न दिखाने में ही अपनी खूबी समझने वाली, भारतीय स्त्रियों की आदि माताओं ने तलवार लेकर सेनाओं का सामना किया है, शत्रु दल को परास्त किया है; देश, पति, मान और अपने धर्म की रक्षा की है। कहिए, क्या ही सुन्दर चित्र है! इन्हीं, आज बीस से अधिक संख्या से परिचय न रखने वाली भारतीय स्त्रियों की पूर्वजाओं ने ग्रन्थ बनाये हैं, अध्यात्म-रहस्यका अनुसन्धान किया है, बड़े बड़े विद्वान्‌वादियों के गर्व उन लोगों ने चूर्ण किये हैं; क्या यह चित्र भद्दा है? क्या इस में आत्मगौरव की ज्योति नहीं चमकती? इन्हीं, आज बात बात पर लड़नेवाली स्त्रियों की पितामहियों ने कितनी धीरता, कितनी सहिष्णुता और कितनी दया दिखलायी है, इस बात के जानने पर हृदय आनन्द से गद्-गद् हो जाता है; इन्हीं, दो पैसे का साग खरीदने में भी ठगी जाने वाली भारतीय स्त्रियों की आदि माताओं ने कितने राज्यों के प्रबन्ध किये हैं, क्या यह बात जान कर आनन्द नहीं आता? क्या यह आत्मगौरव की कहानी न होगी? इसी प्रकार के कई चित्र इतिहासों में पाये जाते हैं। उन्हीं चित्रों में से कतिपय चित्र मैं अपनी भद्दी कलम से खींचना चाहता हूं, यदि मेरी कलम रेखा भी खींच सकी, तो मैं अपने को कृतकार्य समझूंगा।

चन्द्रशेखर।

अध्यात्मज्ञान और विद्वत्ता

मैं एकबार एक कन्यापाठशाला के वार्षिकोत्सव में गया था। वहां प्रान्त के डाइरेक्टर साहब आये थे और उत्तीर्ण छात्राओं को डाइरेक्टर साहब की स्त्री पारितोषिक बांटने वाली थीं। अच्छे अच्छे व्याख्यान हुए, बालिकाओं ने भी कविताएं पढ़ीं, उनकी बनाई वस्तु दिखायी गयी, एक सज्जन उठे, उन्हों ने अपने व्याख्यान में कहा, इन बालिकाओं की शिक्षा से मुझे सन्तोष हुआ। वे व्याख्याता भारतवासी होने पर भी भारतीय सभ्यता के कायल न थे, अतएव उनके सन्तोष के विषय में मुझे कुछ कहना नहीं है, पर मुझे न तो उन बालिकाओं की शिक्षा से सन्तोष हुआ, और न आनन्द। उनकी शिक्षाप्रणाली और उस शिक्षा का प्रभाव— जो उन पर पड़ा था, देख कर मुझे एक बात याद आ गयी। मैं सोचने लगा, इन्हीं बालिकाओं को कुछ दिनों के बाद गृहिणी और माता का पद दिया जायगा। क्या उस समय इनमें सभ्यता प्रवर्तन करने की शक्ति आ जायगी? इन्हीं की पूर्वजाओं ने इतनी शक्ति प्राप्त की थी कि उनके बल पर सभ्यता का निर्माण हुआ था। उन लोगों ने पिता, पति, पुत्र के साथ मिलकर भारतीय सभ्यता की ज्योति दिग्-

दिगन्त में फैलायी थी; सभ्यताप्रचार के आदि साधन वेदों का ज्ञान उन लोगों ने प्राप्त किया था; उन लोगों ने इतनी योग्यता प्राप्त की थी कि वेदों की ऋषि तक हुईं। इन बातों के सोचने विचारने से जो मेरी दशा हुई, या जो मैं ने निश्चय किया उसका न लिखना ही अच्छा है।

आज भी हमारे यहां उन लोगों की संख्या बहुत बड़ी है, जो स्त्रियों का पढ़ना हानिकारी समझते हैं। ऐसा समझने वालों में मूर्ख ही नहीं हैं, पण्डित भी हैं, और वे हैं जो पण्डित होने के कारण जनसाधारण से अपने को अच्छा समझते हैं। वे यह बात जानते हैं कि ज्ञान से मनुष्य के मनुष्यत्व का मोल बढ़ जाता है, पर स्त्रियों के पढ़ाने की बात जहां उठती है, वहां उनका दिमाग फितूर में पड़ जाता है; उनके मत से स्त्रियों के पढ़ाने की बात से बढ़ कर संसार में और कोई नास्तिकता की बात होही नहीं सकती। जो थोड़े बहुत सज्जन, स्त्रियों को पढ़ाना चाहते भी हैं, वे उन्हें ऐसी शिक्षा देना चाहते हैं जिससे वे पुरुषों के मनोरञ्जन कर सकें। मेरी समझ से ये स्त्रीशिक्षा के पोषक और दूसरे स्त्रीशिक्षा के विरोधी इन दोनों में विशेष भेद नहीं। हमको यह न भूलना चाहिए कि स्त्री, पुरुष दोनों में आत्मा है, दोनों में मन है, प्राकृतिक योग्यता जितनी पुरुषों को मिली है, स्त्रियों को भी उतनी ही मिली है। यदि पुरुषों में कोई शक्ति अधिक है और स्त्रियों में न्यून, तो स्त्रियों में भी कोई शक्ति अधिक है और वह पुरुषों में कम है। दोनों को अपनी अपनी उन्नति करने का अवसर देना चाहिए, दोनों को वैसी सुविधा मिलनी चाहिए जिससे

अपनी अपनी उन्नति कर सकें। यदि पुरुषों को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं है कि वे स्त्रियों का मनोरञ्जन कर सकें, तो कोई भी निष्पक्ष मनुष्य इस बात का कायल न होगा कि किसी भी स्त्री को पुरुष-मनोरञ्जिनी विद्या की ज़रूरत है। स्त्री, पुरुषका सम्बन्ध दांव पेच का नहीं है, वह मालिक गुलाम का नहीं है, वह सेव्य सेवक का नहीं है। वह है एक प्रेमात्मक पवित्र संबन्ध; वह कर्तव्य-पालन की शिक्षा के लिए महत्त्वमयी दीक्षा है। ऐसे संबन्ध में मनोरञ्जन की आवश्यकता? भारतभूमि तो भोगभूमि नहीं है, यह तो कर्मभूमि है। कर्मभूमि में मनोरञ्जन की ज़रूरत? हमें भारत-भूमि को कर्मभूमि बनाये रखने से ही लाभ होगा; यदि हमने भारत-भूमि को भोगभूमि बनाने की कल्पना भी की, तो यह निश्चित है हमारे सब कल्याण हमसे दूर हो जायंगे। इतनी दुरवस्था होने पर भी भारत भारत बना है; इसका प्रधान कारण भारत का कर्मभूमि होनाही है।

मैं उदाहरणों द्वारा यह बात बतलाना चाहता हूं कि प्राचीन स्त्रियों को कैसी व्यापक शिक्षा दी जाती थी! उनका प्रगाढ़ पाण्डित्य कैसा बढ़ा चढ़ा था! उन्होंने अध्यात्मवाद तथा अन्य प्रकार की विद्वत्ता में कैसी अपनी योग्यता दिखायी थी! क्या ये बातें पुरुष-मनोरञ्जिनी विद्या की शिक्षा से सम्भव था? क्या मूर्ख रखने के लिए तुले बैठने से ही उन स्त्रियों ने वेद के सूक्तों का आविष्कार किया है? क्या उस समय के तपोज्ञाननिधि याज्ञवल्क्य के समान महर्षि भी स्त्रियों को ज्ञान देना उन्हें खराब करना समझते थे? यदि नहीं समझते थे, तो क्या यह उनकी अयोग्यता है? क्या उन्होंने

जनक की भरी सभा में गार्गी से शास्त्रार्थ करने में अपना अपमान समझा था ? क्या ब्रह्मचारिणी गार्गी उस समय समाज में निन्दित समझी जाती थीं ? यदि नहीं, तो आज यह क्यों धांधली मचायी जाती है ? उस समय जो बातें अच्छी समझी गयी थीं, उन्हें आज हम बुरी समझें इस का क्या अर्थ है ? आप कहेंगे, अजी ! समय बदल गया, यह बीसवीं सदी है । बेशक बीसवीं सदी है। पर बदल गया क्या ? समय का प्रवाह तो वही है, उस समय मनुष्यों में जो गुण दुर्गुण थे, आज भी वे ही हैं। उस समय मनुष्य जैसे उद्योग करते थे, आज भी उनका वैसाही उद्योग है । पुरुषों की शिक्षा में कोई भेद नहीं हुआ, केवल स्त्रियों की शिक्षा में इतने बड़े परिवर्तन हो जाने का कारण क्या ? वे आज पुरुषों के हाथ की पुतलियां बनाई जा रही हैं। वे क्यों जड़ पदार्थों के समान भोग्य बनायी जा रही हैं ?

कतिपय स्त्रीशिक्षा-प्रेमी अपने समाज पर इसलिए सख़्त नाराज़ हैं कि वह स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं देता । वह स्वाधीनता कैसी ? बाहर घूमने की, थियेटर में अपने पतिदेव के साथ जाने की। सचमुच यह स्वाधीनता बड़ी घृणा की वस्तु है ? क्यों ? इसलिए कि इस स्वाधीनता में पतिदेव के मनोरञ्जन की बदबू भरी हुई है; इस स्वाधीनता से पतिदेव स्वयं सुखी होना चाहते हैं; स्त्रियों को सुखी करने की ओर उनका ध्यान नहीं है। वे स्त्रियों को खिलौना बनाना चाहते हैं। क्या कोई भी भलामानुस एक चेतन का इस प्रकार जड़ बनना देख कर प्रसन्न हो सकता है ? प्राचीन भारत में पुरुषों के लिए जो शिक्षा का आदर्श था वही

स्त्रियों के लिए भी था । प्रधान शिक्षा दोनों को समान दी जाती थी। हां, प्रकृतिभेद के कारण उनकी साधारण शिक्षाओं में भेद था; पर आज अप्रधान शिक्षा को ही प्रधानता मिली है । हमारे समाज के ध्यान में यह बात नहीं आती कि स्त्रियों के जीवन का भी कुछ उद्देश्य है, या वे पुरुषों के मनोरञ्जन के लिए ही उत्पन्न हुई हैं ।

मैं यहां अपनी बातों के प्रमाण में प्राचीन कतिपय स्त्रियों की जीवन घटनाएं उपस्थित करना चाहता हूं । सुनिये !

सूर्या (१)

इस नाम की एक ब्रह्मवादिनी स्त्री का परिचय हम लोगों को ऋग्वेद से मिलता है। ऋग्वेद के १० वें मण्डल के ८५ वें सूक्त की ऋषि यही सूर्या थीं। उस सूक्त में वरवधू के विवाहसम्बन्धी बातों का वर्णन है ।

उन मन्त्रों या सूक्तों का ऋषि वही हो सकता है जो उनका आविष्कार करता है, जो उन्हें जनसाधारण में प्रकाशित करता है। यह समझना सहज है कि किसी मन्त्र या सूक्त के ऋषि होने का पद कितना ऊंचा है ! कितना महान् है ! इस पद को पाने के लिये कितने बड़े अगाध ज्ञान की ज़रूरत है ! कितने बड़े भूयोदर्शन की आवश्यकता है ! और वह अगाध ज्ञान, वह भूयोदर्शन पुरुष-मनोरञ्जिनी विद्या के अभ्यास से आसकते हैं ?

इस ब्रह्मवादिनी ऋषि स्त्री के विषय में इस से अधिक और कुछ मालूम नहीं है; पर इस का यश चिरस्थायी है । ऋग्वेद का

महत्व कभी कम नहीं हो सकता, और जब तक संसार ऋग्वेद का नाम जानेगा, तब तक इस स्त्री को भी वह सिर झुकावेगा इस में सन्देह नहीं ।

मैत्रेयी (२)

महर्षि याज्ञवल्क्य एक प्रसिद्ध ऋषि थे, अपने समय के वे सब से बड़े ब्रह्मवेत्ता थे । उन की दो स्त्रियां थीं, एक मैत्रेयी और दूसरी कात्यायनी । मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थीं । उनकी माता का नाम मित्रा था । इसके अतिरिक्त मैत्रेयी के कुल का परिचय हमलोगों को नहीं है ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद है, उसके देखने से इनकी विद्वत्ता, इनके उच्च विचार तथा इन के ऊंचे लक्ष्य का परिचय मिलता है । बृहदारण्यक का वह प्रकरण सचमुच एक महत्व का प्रकरण है ।

महर्षि याज्ञवल्क्य वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने की तय्यारी करने लगे । उस समय दोनों स्त्रियों को बुला कर उन्होंने कहा—इस सम्पत्ति में से तुमलोग आधा आधा बांट लो । मैं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने जाता हूं । यह बात मैत्रेयी को ठीक मालूम न हुई । उन्हीं ने कहा—क्या आप का यह धन और समस्त पृथिवी का अतुल वैभव भी मुझे मिल जाय तो मैं अमर हो सकूंगी ? क्या मुझे मोक्ष मिल जायगा ?

याज्ञवल्क्य ने कहा—धन से कोई अमर नहीं हो सकता । धनिकों का जीवन धन से सुखमय होता है: इसी प्रकार तुम्हारा

जीवन भी सुखमय होगा, पर धन से तुमको मोक्ष नहीं मिल सकता।

इसके उत्तर में मैत्रेयी ने कहा—"येनाहं नामृता स्यां, किमहं तेन कुर्याम्, यदेव भगवान् वेत्थ तदेव मे ब्रवीतु" जिस से मुझे मोक्ष नहीं मिलेगा उसे लेकर मैं क्या करूंगी, इस में आप जो उचित समझें वही मुझे बतलावें। इस उत्तर से याज्ञवल्क्य निरुत्तर हुए। उन्होंने मैत्रेयी से पूछा, तुम क्या चाहती हो? मैत्रेयी ने उत्तर दिया—अमृत, उस का ही उपाय आप बतलावें।

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को साथ लेकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। मैत्रेयी ने अपने महर्षि पति के साथ तत्वचिन्तन कर के मोक्ष प्राप्त किया। मैत्रेयी ने एक प्रार्थना में इस प्रकार अपना लक्ष्य प्रकाशित किया था, उस लक्ष्य को जान लेना चाहिये।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय, आविराविर्म एधि,
रुद्र यत्तेदक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।

असत्य की ओर से हटाकर तू मुझे सत्य की ओर ले जा, अन्धकार की ओर से हटा कर मुझे प्रकाश की ओर लेजा, मृत्यु की ओर से हटाकर मुझे अमृत की ओर लेजा, तुम हमारे सामने प्रकाशित हो, तुम्हारी ज्ञानमय ज्योति हमारे सामने प्रकाशित हो, हे रुद्र, जो तुम्हारा उत्तम भाव है, उस से तुम हमारी रक्षा करो।

कृपा कर इस प्रार्थना पर विचार कीजिए और पहचानिए कि यह स्त्री की प्रार्थना है या पुरुष की। कृपा कर यह भी बतला इए

कि यदि कोई पुरुष कामना करता, यदि कोई पुरुष प्रार्थना करता तो वह प्रार्थना कैसी होती ?

यह थी उस समय की स्वाधीनता। जिस प्रकार पुरुष सोच सकते थे उसी प्रकार स्त्रियां भी। जिस प्रकार पुरुष अपने आत्म-कल्याण की चिन्ता कर सकते थे उसी प्रकार स्त्रियां भी। क्या आपलोग इस बात पर ध्यान देते हैं ? और क्या ऐसा न करना लज्जा की बात नहीं है ? क्या यह चेतनता का तिरस्कार नहीं है ?

भारती (३)

इस प्रकरण में मैं एक और विदुषी स्त्री का परिचय देना चाहता हूं। वे भगवान् शङ्कराचार्य और मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बननेवाली भारती हैं। भगवान् शङ्कर और मण्डन की विद्वत्ता लोकप्रसिद्ध है। इन दोनों आचार्यों के बनाये ग्रन्थ आज भी बड़े बड़े पण्डितों के दांत खट्टे करते हैं। इनके बनाये ग्रन्थ आज भी संस्कृत साहित्य की आदरणीय सामग्री समझे जाते हैं। ऐसे महाविद्वानों का शास्त्रार्थ हो और किस का पक्ष प्रबल है और किस का निर्बल, इस बात का निश्चय करना हो, तो बतलाइए, इस के निर्णय का भार कैसे विद्वान् को दिया जा सकता है ? जिस को मण्डन और शङ्कर के शास्तार्थ में मध्यस्थ बनने का सम्माननीय पद मिले, क्या वह साधारण पण्डित हो सकता है ? इतने बड़े पण्डितों के शास्त्रार्थ में बिना असीम विद्वत्ता के क्या कोई मध्यस्थ बन सकता है ?

उस मध्यस्थ बननेवाली स्त्री का नाम भारती था। ये सोननद के तीर रहनेवाले विष्णुमित्र नामक एक ब्राह्मण पण्डित

की पुत्री थीं। विष्णुमित्र को कोई दूसरी सन्तान न थी। उन्होंने अपनी पुत्री भारती को बड़ी अच्छी शिक्षा दी। वेद, दर्शन, काव्य, व्याकरण में भारती प्रवीण हो गयीं। भारती की माता का नाम सुभगा था, सुभगा भी अच्छी पण्डिता थी, इस की विशेष गति न्यायशास्त्र में थी। भारती ने अपनी माता से न्यायशास्त्र की शिक्षा पायी, भारती की विद्वत्ता और उत्तम गुण थोड़े ही दिनों में उस की प्रसिद्धि के कारण हुए। भारती का यश चारों ओर फैल गया। इस से एक कठिनता उत्पन्न हो गयी, भारती को लोग साक्षात् सरस्वती समझने लगे, और इस का फल यह हुआ कि कोई भी उस से विवाह करने का साहस न कर सका। जो समझदार थे, विद्वान् थे वे भारती की विद्वत्ता देख कर सहम जाते थे और अयोग्यों से ब्याह करना भारती के पिता को स्वीकार न था। इस लिये ब्याह का समय कुछ बीत गया।

उसी समय नर्मदा के तीर पर माहिष्मती नगरी में हितमित्र नाम ब्राह्मण का पुत्र विश्वरूप अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध हो रहा था। उस की प्रसिद्धि चारों ओर फैल रही थी। भारती के पिता ने उसी विश्वरूप को अपनी कन्या के लिये वर चुना। विश्वरूप भी महाविद्वान् था। इन दोनों का ब्याह सुखकर हुआ। भारती पतिगृह में गयीं, वहां उन्होंने पतिसेवा और आत्मकल्याण में चित्त लगाया।

जिन दिनों की यह घटना मैं लिख रहा हूं उन दिनों भारतवर्ष में धार्मिक क्रान्ति हो गयी थी। कर्मकाण्ड का अत्याचार मर्यादा डांक गया था, यज्ञ का तात्पर्य लोग भूल गये थे मनुष्यों तक की

बलि दी जाती थी। इस क्रूर व्यवहार से जनता ऊब गयी थी। धर्म की ओर से लोग घृणा करने लग गये थे। इस का फलस्वरूप बौद्ध-धर्म की सृष्टि हुई। बौद्ध-धर्म ने हिन्दू सभ्यता पर आक्रमण किया, हिन्दुओं के मूलसर्वस्व वेदों की अवहेला की। वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा नष्ट-भ्रष्ट होने लगी, उस समय कुमारिलभट्ट उत्पन्न हुए और उन्हों ने पुनः कर्मकाण्ड की स्थापना करने का प्रयत्न किया। कुमारिलभट्ट बहुत बड़े विद्वान् थे; उन्हों ने शास्त्रार्थ में अनेक बौद्ध विद्वानों को परास्त किया। विश्वरूप के समान प्रकाण्ड विद्वान् तैयार किये। इधर मध्य-भारत में यह प्रयत्न हो रहा था, और उधर दक्षिण-भारत में शङ्करावतार भगवान् शङ्कराचार्य उपनिषद् धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्न कर रहे थे। भगवान् शङ्कराचार्य केवल कर्मकाण्ड की स्थापना करना नहीं चाहते थे। ज्ञान को प्रधानता देकर कर्म और उपासना का प्रचार करना इन का उद्देश्य था, इन के सिद्धान्त लोग पसन्द करने लगे। ये दक्षिण से प्रचार करते हुए प्रयाग पहुँचे; प्रयाग में कुमारिल भट्ट से इन की मुलाकात हुई। कुमारिलभट्ट ने इन को सम्मति दी कि आप माहिष्मतीनिवासी विश्वरूप को साथ लेकर प्रयत्न कीजिए, वह बड़ा विद्वान् है, उस की सहायता से आप के सिद्धान्तों का प्रचार आसानी से हो सकेगा।

शङ्कराचार्य प्रयाग से माहिष्मती नगरी को गये, जो नर्मदा के तीर पर बसी थी। नगरी में घुसते ही विश्वरूप के यहां की पनिहारियों से आचार्य की बातें हुईं, उन की विद्वत्ता देख कर आचार्य को आश्चर्य हुआ। वे विश्वरूप के घर पहुँचे। मध्याह्न का समय

था, विश्वरूप श्राद्ध कर रहे थे, जैमिनि और व्यास श्राद्ध करा रहे थे, बाहर के किवाड़ बन्द थे। भगवान् शङ्कराचार्य किसी प्रकार भीतर पहुँचे। श्राद्ध के समय संन्यासी का आना अशुभ समझा जाता है, इस लिए विश्वरूप ने जब संन्यासी को अपने श्राद्ध मण्डप में देखा तो उन को क्रोध हुआ। उन्हों ने कड़ाई के साथ प्रश्न किया। शङ्कराचार्य ने भी कड़ाई के साथ उत्तर दिया। कड़ाई बढ़ने लगी, विनोद वृत्ति क्रोध के रूप में परिणत हुई। उस समय व्यास ने विश्वरूप को सावधान किया। विश्वरूप भी समझ गये कि यह कोई साधारण संन्यासी नहीं है। उन्हों ने शङ्कराचार्य को भिक्षा के लिए निमन्त्रित किया। शङ्कराचार्य जी ने अपना उद्देश्य बताया, उन्हों ने कहा—इस साधारण भिक्षा से मेरी तृप्ति नहीं, मैं धर्म-स्थापन के प्रयत्न में लगा हूं। विवादियों को परास्त कर मैं विशुद्ध वेद मत का प्रचार कर रहा हूं। उस में तुम्हारी सहायता चाहता हूं। चाहो शास्त्रार्थ कर लो, चाहो बिना शास्त्रार्थ के ही मेरा मत स्वीकार करो। विश्वरूप ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया। अब रही एक बात की चिन्ता, इतने बड़े दिग्गज पण्डितों के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ कौन बनाया जाय। जैमिनि और व्यास को इस पद के ग्रहण करने के लिए कहा गया, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उनलोगों ने कहा—सरस्वती अवतार भारती के अतिरिक्त दूसरा कोई शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नहीं हो सकता। विश्वरूप ने समस्त-विद्या-विशारदा शारदा (भारती) नाम की अपनी स्त्री को मध्यस्थ बनाया और वे शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुए।

शास्त्रार्थ का अन्तिम फल शङ्कराचार्य के अनुकूल हुआ, भारती ने निर्णय किया कि मेरे पति हार गये। शङ्कराचार्य ने कहा—विश्वरूप! अब तुम हमारे शिष्य बनो, क्योंकि हम में तुम में यह प्रतिज्ञा पहले हो चुकी है। विश्वरूप चुप थे, भारती ने उत्तर दिया, महाराज! आप ने अभी मेरे पति पर आधी विजय पायी है, मैं उनकी सहधर्मिणी हूं; बिना मुझे परास्त किये आप को अधिकार नहीं है कि आप मेरे पति को हारा हुआ समझें और उन्हें शिष्य बनावें। शङ्कराचार्य ने कहा—यशस्वी लोग स्त्रियों से शास्त्रार्थ नहीं करते। इसका उत्तर भारती ने जो दिया है, वह मैं शङ्कर-दिग्विजय के लेखक के शब्दों में सुना देना चाहता हूं। भारती ने शङ्कराचार्य को उत्तर दिया—

स्वमतं प्रभेत्तुमिह यो यतते, सवधूजनोऽस्तु यदि वास्त्वितरः
यतितव्यमेव खलु तस्य जये निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन्।
अतएव गार्ग्यभिधया कलहं सह याज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत्
जनकस्तथा सुलभयाऽबलया किममी भवन्ति न यशोनिधयः।

भगवन्, अपने मत के खण्डन के लिए जो यत्न करे, चाहे वह स्त्री हो या और कोई, उसको जीतने के लिए, अपने पक्ष की रक्षा करने वालों को प्रयत्न करना चाहिए। इसीलिए मुनिराज याज्ञवल्क्य ने गार्गी नाम की स्त्री के साथ शास्त्रार्थ किया था, योगिराज जनक ने सुलभा नाम की स्त्री के साथ शास्त्रार्थ किया था। कहिए, क्या ये यशस्वी नहीं हैं? फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं कि यशस्वी लोग स्त्रियों से शास्त्रार्थ नहीं करते? शङ्कराचार्य चुप हो गये उन्होंने भारती से शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया, भारती

ने शङ्कराचार्य से खूब शास्त्रार्थ किया। पर शङ्कराचार्य किसी वेद-विरुद्ध मत का प्रतिपादन तो करते नहीं थे, उनका मत धर्म और वेदों के अनुकूल था और सभी को वह मान्य था, इसीलिए अन्त में भारती ने भी अपनी हार मान ली।

भगवान् शङ्कराचार्य पर इस स्त्री के पाण्डित्य का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उन्हों ने शृङ्गेरीमठ में इनकी मूर्त्ति की स्थापना की थी।

ये चित्र हैं भारतीय स्त्रियों के, कोई भी देश अपने यहां की स्त्रियों का चित्र इससे अधिक उज्ज्वल, अधिक सुन्दर दिखला सकता है? और, क्या भारतवासी आज भी अपनी रीति को प्राचीन अपने आदर्श के अनुकूल बना सकते हैं?

त्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता

त्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता मनुष्य के बड़े गुण हैं। आत्मविश्वासी मनुष्य कभी अपने कामों में असफल नहीं होता। उसे अपने पर विश्वास होता है, उसे अपने प्रयत्नों पर भरोसा रहता है। वह मैंने जो काम शुरू किया है, उसको पूरा करने के लिये मेरे प्रयत्न, मेरा परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जा सकते, इस आत्मविश्वास का परिणाम, बहुत ही मधुर होता री काम प्रायः सफल होते हैं। क्यों? क्या इस संसार आदमी है जिसके मनोरथ पूरे उतरते हों? हां. से आदमी हैं। वे आत्मविश्वासी कहे जाते हैं। ो बहुत कम असफल होते देखे गये हैं, उन की प्रधान कारण यह है कि वे समीक्ष्यकारिता की त्मविश्वास की स्थापना करते हैं। वे विवेकी होते ी शक्तियों को अच्छी तरह पहचानते हैं, वे जानते शक्तियों में इतना बल है, इतना बल रखने वाली रे काम पूरे होते हैं। इस प्रकार के विचार समीक्ष्य- जाते हैं। समझ बूझ कर करने का नाम समीक्ष्य- जो मनुष्य समझ बूझ कर काम करना जानता

है, भला वह आत्मविश्वास क्यों न करेगा ? और जो आत्मविश्वासी है, भला, वह सफल क्यों न होगा ?

भारतीय पुरुषों में आत्मविश्वासियों की कमी नहीं और समीक्ष्यकारियों का भी अभाव नहीं। भारतीय पुरुष अपने आत्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता के लिये प्रसिद्ध हैं, पर इन गुणों को केवल पुरुषों ने ही अपने बांटे ले रखा है, स्त्रियां इन गुणों से वञ्चित हैं, वे कोरी हैं, यह नहीं समझना चाहिए। मैं नीचे उदाहरण देना चाहता हूं, जिन से आप जान सकेंगे कि भारतीय स्त्रियों में आत्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता कितनी थी ! उन लोगों ने अपने आत्मविश्वास और समीक्ष्यकारिता के भरोसे, इन के बल पर कितने बड़े काम किये हैं ! असम्भव को सम्भव कर दिखाया है, प्रकृति के नियमों तक को उलट दिया है। प्रमाण लीजिये—

(१)

बहुत पुरानी बात है। वैवस्वत मनु के पुत्र का नाम शर्याति था; शर्याति राजा थे और बड़े ही पराक्रमी थे। इनकी स्त्रियां तो बहुत थीं, पर एक कन्या के अतिरिक्त इन को और कोई सन्तान न थी।

राजा का सुख संसार में सब सुखों से बड़ा समझा जाता है। पर ऐसा वेही समझते हैं जो राजा नहीं हैं। राजा अपने सुख को वैसा नहीं समझता, अतएव बीच बीच में वह राजधानी छोड़ कर वनों और गांवों में साधारण जीवन का आनन्द लूटने के लिये जाता है। राजा शर्याति भी एक बार किसी जंगल में गये वे अपने

परिवार के साथ गये थे। उन के संग रानियां थीं, उनकी कन्या थी और थोड़े बहुत नौकर चाकर थे।

शर्याति का दल बन में पहुंच कर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने अपने मनोविनोद में लग गया। राजा, रानी जलक्रीड़ा में लग गये। राजकन्या अपनी साथिनों के साथ इधर उधर घूमने लगी, सुन्दर सुन्दर फूल चुनने लगी। उसी बन में राजकन्या ने एक मिट्टी का ढेर देखा, उस के भीतर कोई चीज़ चमकती सी मालूम हुई। राजकन्या बालिका थी ही, उसको क्या मालूम, क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये, राजकन्या ने एक कांटा उठाया और उस से उस चमकीली वस्तु को खोद दिया। इस प्रकार खेल कूद कर राजकन्या अपने स्थान पर लौट आयी।

जिस मिट्टी के ढेर को राजकन्या ने देखा था वह महर्षि च्यवन थे और वह चमकीली वस्तु जिसे राजकन्या ने खोदा था, वह थी महर्षि च्यवन की आंख। महर्षि की आंखें राजकन्या ने फोड़ डालीं, यह उस का अपराध था, चाहे वह अनजाने ही क्यों न हो, पर अपराध तो था। इस अपराध से, राजा के दल में रोग फैल गया, लोग बेचैन हो गये। इस का कारण ढूंढ़ा जाने लगा, इस का कारण क्या है? किस अपराध से, किस अत्याचार से, समूचे दल को यह कष्ट भोगना पड़ रहा है? इन बातों का लोग विचार करने लगे, पता लगाने लगे। ढूंढ़ते ढांढ़ते लोगों को मालूम हुआ कि महर्षि च्यवन को किसी ने कष्ट दिया है और उसी अपराध का फल सब लोगों को भोगना पड़ रहा है।

इतना हुआ, पर इस बात का पता न लगा कि यह अपराध किया किस ने ? सब से पूछा जाने लगा, सभी ने "ना" कहा। उसी समय राजकन्या वहां पहुंची और उसने अपना अपराध स्वीकार किया। वह चाहती तो अपना अपराध छिपा सकती थी, किसी ने उस को अपराध करते देखा नहीं था। आज कल की लड़कियां और लड़के प्रायः ऐसा करते हैं। वे अपने दोषों को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वे समझते हैं—दोषों का छिपाना ही निर्दोष बनना है। पर ऐसा समझना भूल है, दोषों को—अपराधों को प्रकाशित करना, उन दोषोंके लिए पश्चात्ताप करना, अपमानित होना और दण्ड भोगना अपनी शुद्धि करना है, दोषों की ओर से अपने को बचाये रहने का यह सब से अच्छा उपाय है। यह बात राजकन्या जानती थी उस समय की ऐसी शिक्षा ही थी। राजकन्या ने अपने दोष ज्यों के त्यों सब के सामने प्रकाशित कर दिये। राजकन्या ने कहा—मैं जानती न थी कि मेरे इस कार्य से एक महर्षि को कष्ट पहुंचेगा, उस का परिणाम मेरे माता, पिता आदि परिवार तथा नौकर चाकरों तक को भोगना पड़ेगा। पिताजी, जिस तरह से हो इसका उपाय होना चाहिये, यह मेरा अपराध है, इस का दण्ड मुझे मिलना चाहिये, मेरे अपराध का दण्ड दूसरे भोगें यह अनुचित बात है। कृपा कर आप इस का प्रबन्ध करें।

राजा महर्षि के पास गये। मिट्टी की तहों में से महर्षि निकाले गये। राजा ने हाथ जोड़ कर पूछा—मेरी कन्या के लड़कपन की के कारण आप को यह कष्ट भोगना पड़ा है महाराज,

एक बालिका के अपराध के कारण हम सब लोगों को कष्ट भोगना पड़ रहा है, यह आपकी कैसी विवेचना है ? यह कैसा क्रोध है ? दया करें !

महर्षि ने कहा -मैंने क्रोध नहीं किया और न मैंने शाप ही दिया। मुझ निरपराध व्यक्ति को जो कष्ट पहुंचाया गया है, उसका फल तुम सब लोगों को भोगना पड़ेगा। तुम कह सकते हो, अपराध एक आदमी का है और दण्ड भी उसी एक आदमी को भोगना चाहिये। राजन्, ! यह बात ठीक है; पर बालिका का कोई दोष नहीं, अभी उसमें विवेक उत्पन्न नहीं हुआ, बालक के कार्यों का फलाफल बालक को नहीं भोगना पड़ता। इसका कारण यह है कि बालक किसी वासना की पूर्ति के लिए कोई काम नहीं करता। बालक के कार्यों का फलाफल उसके बड़ों को होता है, क्योंकि बालक उन्हीं के द्वारा परिचालित है। यदि पिता, माता चाहें तो बालकों से कोई बड़ा दोष न होने पावे, यदि वे सावधानी रखें, तो बालक कोई अपराध नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए तुम मेरीही बात लेलो। यदि राजकन्या के साथ कोई समझदार मनुष्य होता, यदि राजकन्या को वनकी सभी बातें बतलायी गयी होतीं, यदि वन में रहनेवाले मुनियों की अवस्थाएं बतलायी गयी होतीं, तो राजकन्या यह अपराध कभी नहीं करती; अतएव राजन्, राजकन्या के अपराधका दण्ड उसके बड़ोंको भोगना पड़ रहा है।

राजा ने कहा—महाराज, कृपाकर अब आप वह उपाय बतलावें जिससे हमलोगोंका यह कष्ट दूर हो। महर्षि ने कहा—

राजन् ! मेरी वृद्धावस्था है, वृद्धावस्था में स्वभाव से ही शरीर शिथिल हो जाता है, मनुष्य एक प्रकार से असहाय हो जाता है, उस पर मेरी आंखें फोड़ दी गयीं, अब तो मैं नितान्त असमर्थ हो गया। अब मैं वृद्ध और अन्धा होकर अपने व्यवहारों को कैसे निभा सकूंगा ? मेरे व्यवहारों के रुकने से तुम्हारा अनिष्ट होगा, इसमें सन्देह नहीं। अब तुम्हारे लिए यही एक उपाय है कि तुम अपनी कन्या का विवाह मुझसे करदो, राजकन्या की सहायता से मैं अपना अनुष्ठान कर सकूंगा, इससे तुम लोगों के कष्ट भी दूर हो जायंगे।

महर्षि के इन वचनोंसे राजा की जो दशा हुई, उसका अनुमान करना सहज है। अपने कष्टों को दूर करनेके लिये, अपने सुख के लिये अपनी एकलौती बेटी का बलिदान, एक अज्ञात संसार-भाव कन्या का एक वृद्ध के साथ विवाह, यह कैसा कठिन काम है ? कैसा क्रूर काम है ? क्या अपना सुख इतना बहुमूल्य है कि उसके लिये कन्या का बलिदान किया जाय ? कन्या का जीवन नष्ट किया जाय, कन्या एक बूढ़े के गले बांध दी जाय और इस तरह ऊंट के गले बंधी बछिया की सी उसकी दुर्दशा करायी जाय ! राजा के सामने कठिन प्रश्न था, वह कुछ भी निर्णय नहीं कर सकता था। अपने पिता की यह दुर्दशा देख कर कन्या से न रहा गया, उसकी पितृभक्ति उमड़ आयी। वह अपने पिता के पास गयी और बोली।

राजकन्या—पिता जी, वह कन्या अभागिनी है, जिस के कारण उसके पिता, माता आदि गुरुजनों को कष्ट उठाना पड़े मेरेही

अपराध के कारण आपलोगों को कष्ट उठाना पड़ रहा है, यह मेरे लिए कलङ्क की बात है। आप पिता हैं, आप राजा हैं, आप का धर्म है कि आप अपने पुत्र, कन्या और प्रजा को कलङ्क से बचावें; अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप महर्षि का कहना मान लें। इससे मेरे अपराध का दण्ड मुझ को मिल जायगा, जैसा आपलोग समझते हैं, और आपलोग कष्टों से बच जायंगे।

राजा के लिए कोई दूसरी गति नहीं थी, उन्हों ने कन्या का कहना मान लिया, और महर्षि के साथ उसका ब्याह कर दिया।

यह एक प्राचीन इतिहास की घटना है। एक कन्या ने, सो भी राजकन्या ने, एक वृद्ध, अन्धे, वनवासी ऋषि से स्वयं ब्याहा जाने की प्रार्थना की। क्या वह अविचारिणी थी, या मूर्ख? या उस को किसी ने बहकाया था? यह कुछ नहीं हुआ था, उसने स्वयं स्वेच्छा से प्रेरित होकर ऐसी प्रार्थना की थी। क्यों? सुनिए, वह समीक्ष्यकारिणी थी और आत्मविश्वासिनी। सब से पहले उसने सोचा कि यदि मेरे कष्ट भोगने से राजा और राजपरिवार का कष्ट दूर हो तो मुझे उस कष्ट के भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। राजा के कष्ट से अनेक मनुष्यों को कष्ट भोगना पड़ेगा, राज्य विशृङ्खल हो जायगा। धर्माचारियों की क्रियाएं नष्ट हो जायंगी, प्रजा अव्यवस्थित हो जायगी, आपस में लूट मार शुरू हो जायगी। क्या यह बात अच्छी होगी? महर्षि वृद्ध हैं तो क्या हुआ? क्या स्त्रियां ब्रह्मचारिणी नहीं रह सकतीं? क्या स्त्रियां अपने समाज के लिए, अपने धर्म के लिए, अपने पिता, माताओं के लिए, आत्मत्याग नहीं कर सकतीं? सतीत्व भी तो कोई वस्तु है

उस में बड़ी शक्ति सुनी जाती है, सतीत्व के प्रभाव से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। सम्भव है, सतीत्व के प्रभाव से हमें सांसारिक सुख भोगने का भी अवसर मिल जाय।

उस कन्या ने सोचा, इस प्रकार मैंने जो विचार निश्चित किया है उसमें हानि होने की सम्भावना नहीं। इन्द्रियसुख ही तो सब सुखों से बड़ा नहीं है! क्या कर्तव्यपालन में सुख नहीं है? कौन कहता है? यदि कोई ऐसा कहे, उसका कहना प्रामाणिक नहीं होना चाहिए। कर्तव्यपालन में सुख है, गृहस्थ-धर्म का पालन करना कर्तव्य है, पर वह गृहस्थ-धर्म यदि निष्काम भाव से पालन किया जाय तो अवश्य ही उसकी उज्ज्वल प्रभा समस्त संसार को प्रकाशित कर सकती है! जिसकी शक्ति से संसार प्रकाशित हो उठे, क्या उसके लिए यह कम सुख की बात है? क्या इसमें कुछ गौरव नहीं? इसमें कुछ महत्त्व नहीं? यदि है, तो मुझे एक वृद्ध के साथ ब्याह करने में आपत्ति कौनसी है?

राजा ने अपनी कन्या की बातें मानलीं, राजकन्या महर्षिच्यवन के साथ ब्याही गयी। उस ने अपने धर्म का पालन किया, उसने अपने बल से अपने सदाचरण से, अपने मनोरथ को सिद्ध करने के लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया, वह पतिगत प्राण हो गयी, वह अपने को भूल गयी। वह दुलारी राजकन्या है, वह राजकुल में पली है, उस की आज्ञा पालन करने के लिए कितने ही दास, दासी रहते थे, आदि बातों को वह भूल गयी, उस ने अपने को अपने पति के रूप में मिला दिया, पति-सेवा, पति-चिन्तन ही उसके जीवन के प्रधान कार्य हो गये। उसने अपने इन कार्यों का अच्छा अभ्यास करलिया, उसे कुछ शक्ति प्राप्त हो गयी।

राजकन्या जिस वनमें अपने पतिके साथ रहती थी, उस वनमें एक सुन्दर तालाब था। उसी तालाब पर प्रतिदिन स्नान करने तथा जल लानेके लिए वह जाया करती थी। एक दिन राजकन्या उस तालाब पर गयी हुई थी, संयोगवश दोनों अश्विनीकुमार भी वहां पहुंच गये। इन लोगोंने राजकन्या को देखा, उसके सौन्दर्यको देख कर ये चकित हो गये। उन लोगोंने उसका परिचय पूछा, उसने अपना परिचय बता दिया, उन लोगोंने कहा—तुम्हारा पति च्यवन वृद्ध है, कुरूप है, तुम सुन्दरी हो, युवती हो, तुम उसके साथ क्यों अपना जीवन नष्ट कर रही हो? हमदोनोंमें से जिसको चाहो तुम अपना पति बना सकती हो, और इस प्रकार अपने जीवन को सुखमय बना सकती हो। राजकन्या उनकी इन बातों को सुन कर बोली, धिक्कार है तुम लोगों को! तुम्हारी माताओं को! और उस कुल तथा समाज को जिसने तुमलोगों जैसे, परदारलम्पट अधर्मी को जन्माया है और धारण किया है! राजकन्या की इन बातों को सुन कर वे कुछ कहनाही चाहते थे कि वह बोली, खबरदार! अब जहां तुमलोगों ने मेरे पति, मेरे सतीत्व तथा मेरे विरुद्ध एक शब्द भी कहा तो मैं अपने सतीत्वके प्रभावसे तुमलोगोंको भस्म कर दूंगी।

अब अश्विनी कुमारोंको चेत हुआ, उन लोगोंने समझा कि हमलोगों ने अधर्म किया है, हमलोगोंने अधमता की है। इसका प्रायश्चित्त करना चाहिये, राजकन्याको प्रसन्न करनाही हमलोगों का उत्तम प्रायश्चित्त है। यह सोच कर उन लोगोंने राजकन्या से कहा—सति! तुमको नमस्कार, तुम्हारा चरित्र अभिनन्दनीय है!

हमलोगोंने तुम्हारी परीक्षाके लिये ये बातें कही हैं, अब हमलोग एक प्रस्ताव करना चाहते हैं। हमलोग देव-वैद्य हैं हमलोग वह विद्या जानते हैं जिससे वृद्ध मनुष्य युवा हो जाता है। हमलोग चाहते हैं कि विद्याके प्रभाव से तुम्हारे वृद्ध पतिको युवा बना दें। हमारी विद्यासे तुम्हारा पति ठीक हमलोगोंके समान हो जायगा, उस समय तुम हम तीनोंमें से अपने पतिको पहचान लेना। कहो, क्या तुम हमलोगोंके इस प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहती हो ?

राजकन्या उनकी बातें सुन कर चुप हो गयी। वह सीधे अपने पतिके पास पहुँची और उनसे अश्विनीकुमारों की बातें उसने कह सुनायीं। पति ने वैसा करना स्वीकार किया, अश्विनीकुमारों को यह बात मालूम करायी गयी, अश्विनीकुमारोंने उद्योग किया औषध दिये, जिससे च्यवन महर्षि का वार्द्धक्य दूर हो गया और वे पुनः युवा हो गये। उन तीनोंने मिल कर एक साथ उसी तालाबमें स्नान किये, स्नान करनेके पश्चात् तीन युवक समान रूप और समान अवस्थाके राजकन्याके सामने उपस्थित हुए। यह समय राजकन्याके लिए बड़ाही विषम था, वह उन तीनोंमें से किसीको चुने। उसका वृद्ध पति कौन है ? वह इसी चिन्ता में थी; वह अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकती थी। पतिव्रता के संकटकी उपेक्षा करना देवताओंकी शक्तिके बाहर की बात है। माता सरस्वती की कृपासे उसी समय राजकन्याके हृदयमें ज्ञानकी ज्योति प्रकाशित हुई, उस ज्योतिके प्रकाश में उस ने अपने पति च्यवन को पहचान लिया और उन्हीं को चुन लिया। महर्षि बड़े प्रसन्न हुए। यह कहना मेरे लिए कठिन है कि अश्विनी-

कुमारों को उससे प्रसन्नता हुई कि नहीं। महर्षि च्यवन ने प्रसन्न हो कर अश्विनीकुमारों से वर मांगने के लिए कहा। उन्हों ने यज्ञ में भाग मिलने की प्रार्थना की; महर्षि की कृपा से उन्हें वह अधिकार प्राप्त हुआ।

राजकन्या अपने पिता के यहां से पति के घर आकर एक प्रकार सुख से ही है। यदि उसे दुःख भी होता तो भी उस दुःख का उत्तरदायित्व उसी के सिर होता; उस ने स्वयं अपनी इच्छा से महर्षि से ब्याह करने की पिता की आज्ञा चाही थी, पर उसे दुःख नहीं हुआ, उसकी सोची बातें ज्यों की त्यों उतरीं. उसने अपने प्रयत्न में सफलता पायी, उसने अपने सतीत्व के प्रताप से असम्भव को सम्भव कर दिखाया। वृद्ध पति को युवा बना दिया, निष्काम कर्म का उज्ज्वल प्रकाश उसने संसार में प्रकाशित कर दिया, पर इन बातों की खबर उसके पिता राजा शर्याति को नहीं थी। उन्हों ने समझा था कि मैं ने अपनी कन्या का ब्याह एक वृद्ध के साथ कर के उसका बलिदान कर दिया! क्या अब तक वह बूढ़ा जीता होगा? वृद्ध के न रहने पर कन्या की क्या दशा होगी? इसी प्रकार की अनेक शङ्काएं राजा के मन में उठती होंगी, और उन्हीं शङ्काओं से प्रेरित हो कर राजा अपनी कन्या को देखने के लिये प्रस्थित हुए।

यथासमय राजा और रानी वन में पहुंचे। वहां उन्हों ने अपनी कन्या को एक युवा पुरुष के साथ बैठे देखा। इस आश्चर्य-घटना को देख कर शङ्काओं का होना स्वाभाविक ही है। साधारण मनुष्य सतीत्व के महत्त्व को क्या जाने? बिना किसी के बतलाये उन के

मन में सतीत्व के महत्व की कल्पना भी क्यों होने लगी ? राजा ने अपने मन में सोचा, हाय, मैंने क्या किया ! एक वृद्ध के साथ अपनी कन्या का ब्याह कर मैंने उसे कुपथ में जाने के लिए बाध्य किया । अवश्य ही मेरी कन्या ने अपने वृद्ध पति का वध किया, और दूसरे तरुण पुरुष के साथ ब्याह कर लिया । यदि मैंने वृद्ध के साथ इस का ब्याह न किया होता तो कभी यह मेरे कुल में अपने इस कुकर्म के द्वारा दाग न लगाती । अच्छा, अब इस का एक क्षण के लिए भी जीना मेरे यश के लिए उचित नहीं । इस के जीने से मेरी प्रतिष्ठा में धब्बा लगेगा । इसी प्रकार के कितने ही विचार राजा के मन में उत्पन्न हुए, राजा ने उस कन्या को मार डालने का अपना विचार पक्का कर लिया ।

राजकन्या अपने पिता, माता के आगमन से बहुत प्रसन्न हुई । वह पिता के पास जाने के लिये शीघ्रता से चली । पास पहुंचते ही पिता और माता की मुखमुद्रा देख कर वह डर गयी । थोड़ी देर तक वह खड़ी खड़ी पिता और माता की ओर देखती रही । इसी समय उसे अपनी पहली अवस्था का स्मरण हुआ, उसे अपने पति की वृद्धावस्था की बात याद आयी, और वर्तमान अवस्था भी उसने देखी, उस को अपने पिता के मन की शङ्काओं का कारण मालूम हो गया । पिता की शङ्काओं को दूर करने का सब से उत्तम उपाय उसने अपनी अवस्था के परिवर्तन की सब बातों का वर्णन कर देना ही समझा । कन्या के मुख से राजा को सब बातें मालूम हुईं, वे प्रसन्न हुए, उन्होंने अपनी कन्या को सुकन्या कहा, क्योंकि इस कन्या ने आत्मबल पर अपनी उन्नति की, अपने सुख की

सामग्रियां एकत्रित कीं, अपने पिताके कुल को गौरवान्वित किया। राजा इस बात से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने एक यज्ञ करने का निश्चय किया। राजा की प्रार्थना से महर्षि च्यवन ने उस यज्ञ का आचार्य होना स्वीकार कर लिया। यज्ञ में महर्षि ने अपने पूर्व उपकारी अश्विनीकुमारों को निमन्त्रित किया, उन्हें यज्ञ का भाग दिया। यह बात इन्द्र को बहुत बुरी लगी, शायद इन्द्र ने अपना बड़प्पन इसी में समझा हो कि दूसरे नीच बने रहें, नहीं तो, यह रुकावट कैसी ? जो स्वभावतः महान् होता है, उसकी दूसरे के महान् बनने से कोई हानि नहीं होती। अतएव वह भयभीत भी नहीं होता, वह किसी को बड़ा बनने से रोकता भी नहीं, बल्कि जहां तक बनता है वह दूसरों को बड़ा बनने में सहायता पहुंचाता है। इन्द्र भयभीत था, क्योंकि उसमें कोई स्वाभाविक योग्यता नहीं, वह अपनी शक्ति से दूसरों को नीचे दबा कर स्वयं महान् बना रहना चाहता था, पर यह तो असम्भव है और अप्राकृतिक है। इन्द्र की एक न चली, महर्षि च्यवन को बृहस्पति की सहायता मिली, इन्द्र ने वज्र उठाया, पर महर्षि के तेज से इन्द्र का हाथ सूना हो गया, वज्र चल न सका। महर्षि विजयी हुए, अश्विनीकुमारों को यज्ञ का भाग मिला, राजा शर्याति प्रसन्न और तृप्त हुए।

येही राजकन्या सुकन्या के जीवन की घटनाएं हैं। इन घटनाओं पर विचार करने से कई महत्व की बातें मालूम होती हैं, वे क्रमशः नीचे लिखी जाती हैं—

बालकों की देख रेख सावधानी से होनी चाहिए, एक क्षण के लिए भी उनकी ओर से असावधान न होना चाहिए। बालकों की ओर असावधानी करने से उनके द्वारा बड़े बड़े अपराध हो सकते हैं (जैसे राजकन्या द्वारा महर्षि की आंख का फोड़ा जाना)।

यदि एक आदमीके कष्ट उठानेसे बहुतोंका कष्ट दूर होता हो, तो एक आदमी को कष्ट उठाने के लिए तैयार हो जाना चाहिए (जैसे सुकन्या ने स्वयं कष्ट उठा कर अपने पिता, माता आदि को कष्ट से बचाया)।

कष्ट की सामयिक परिस्थिति भी अपने धार्मिक सदाचारों के पालन करने से अच्छे रूप में बदली जा सकती है (जैसे सुकन्या ने अपने सतीत्व धर्म से वृद्ध पति को युवा बना लिया)।

चाहे कोई भी हो, यदि उसके द्वारा अपने धर्म में आघात लगता हो, तो उसका सामना करो (जैसे सुकन्याने अश्विनीकुमारों के साथ किया); इससे लाभ होता है, हानि नहीं।

पूर्व अपराधी भी यदि अपने साथ उपकार करे तो उनके उपकारों का बदला देना चाहिये (जैसे च्यवन ने अश्विनीकुमारों को दिया)।

(२)

ात्मविश्वास समीक्ष्यकारिता का एक उदाहरण दिखाया गया, ह उदाहरण पुराना है, अतएव एक और उदाहरण जो इस की अपेक्षा है, यहां दिखा देना आवश्यक प्रतीत होता है।

2600

(राजपुताने में) रूपनगर नामकी एक छोटी रियासत थी। जिस समय की घटना मैं लिख रहा हूं उस समय उस रियासत के अधिपति विक्रमसिंह थे। विक्रमसिंह की एक कन्या थी, उसका नाम चञ्चलकुमारी था। पर इस कुमारी ने अपनी समीक्ष्यकारिता और आत्मविश्वास का जो उदाहरण दिखाया है, वह अनुपम है। इसने अपनी समीक्ष्यकारिता तथा आत्मबल के कारण दिल्ली के सम्राट् औरंगजेब को, उनकी मानिनी उदयपुरी बेगम को, तथा उनकी कुमारी को नीचा दिखाया था।

एक दिन रूपनगर में कोई तसवीर बेचनेवाली बुढ़िया आयी। उसके पास राजाओं की तसवीरें थीं, उन तसवीरों में औरंगजेब की भी एक तसवीर थी, चंचलकुमारी की आज्ञासे वह तसवीर जमीनमें फेंकदी गयी, तथा पैरोंसे कुचली गयी। यह बात तसवीर-बेचनेवाली उस बूढ़ी को बहुत बुरी लगी, उसने यह बात दिल्ली जाकर औरंगजेब की बेगम उदयपुरी के कानों तक पहुंचायी, उदयपुरी बेगम ने चंचलकुमारी से अपना हुक्का भरवाने की प्रतिज्ञा की। जेबुन्निसा नामकी बादशाहजादी ने भी यह बात सुनी और उसने चञ्चलकुमारी से अपने पैर दबवाने की प्रतिज्ञा की। इन दोनोंने मिलकर बादशाहसे चंचलकुमारी की बेअदबी कह सुनायी और उसको दण्ड देनेकी अपनी प्रतिज्ञायें कह सुनायीं, बादशाह चंचलकुमारी की हरकत सुनकर आग-बबूला होगया। उसने इसी समय एकदूत के हाथ रूपनगर एक पत्र भेजा, वह पत्र रूपनगर के अधिपति राजा विक्रमसिंह को लिखा गया था, और उसमें चंचलकुमारी को शाही महल में भेजदेनेकी आज्ञा दी

गयी थी। उस समय उदयपुर के महाराजा को छोड़कर राजपुताने के अन्य क्षत्रिय राजा पेट के गुलाम हो चुके थे। अपने सुखों के लिए, अपनी विलास वासना पूरी करने के लिए धर्म बेचना या अपनी इज्जत बेचना उनके लिये कोई बड़ी बात न थी। राजा विक्रम सिंह ने बादशाह की आज्ञा मानली। दिन नियत हो गया जिस दिन बादशाही फौज आकर चञ्चलकुमारी को शाही महल में ले जायगी।

यह खबर चंचलकुमारी ने भी सुनी। भारतीय बालिकाएं पिता, माताओं की आज्ञाके अधीन होती हैं, यह सच है, पिता की माता को अथवा अन्य गुरुजनों की आज्ञाओं के पालन करने के लिए अपने सुख दुःखों की ओर वे नहीं देखतीं। वे पिता माता की आज्ञा पालन करने के लिये अपने को मिटा देती हैं। पर कब तक? जब तक पिता, माता की आज्ञा धर्म के प्रतिकूल नहीं होती। वे पिता, माता का आदर करती हैं, उन की आज्ञा मानती हैं, पर उससे भी बढ़कर धर्मका सम्मान करती हैं, धर्म के सम्मान मे अपना, अपने कुल, परिवार तथा अपने देश का कल्याण समझती हैं। अतएव धर्मविरुद्ध किसीकी भी आज्ञा मानना भारतीय बालिकाओं के लिये कठिन है।

इस खबर के सुनतेही चंचलकुमारी की चंचलता दूर होगयी, उसने गम्भीर रूप धारण किया, अभीतक खेल कूदमें लगी रहनेवाली चंचलकुमारी एक गम्भीर प्रौढ़ा बन गयी, वह इस संकटसे रक्षा पानेके लिए उपाय सोचने लगी। रूपनगर की रियासत छोटी थी, और उसपरभी उसके अधिपति अनुकूल न थे, फिर उस रिया

सबकी शक्ति पर भरोसा क्या किया जाय ? राजपूताने के दूसरे बड़े बड़े राजा अपनी लड़कियां पहलेही से शाही महलमें भेज चुके थे, ऐसी दशामें भला वे क्या सहायता करते ? उस समय बिना दागी सवार एक उदयपुर का महाराणा राज सिंह था, पर उससे रूपनगर के अधिपति की शत्रुता थी। क्या शत्रु की कन्या की सहायता शत्रु कर सकता है ? समस्या कठिन है, प्रश्न बीहड़ है, हल कैसे हो ? उत्तर कैसे दिया जाय ? इसी उधेड़-बुन में चंचल-कुमारी बैठी थी, उसी समय उसकी सखी निर्मलबाई वहां आ पहुंची, इसे भी राजकुमारी की पलटनेवाली दशा की खबर आ चुकी थी, निर्मल ने कहा—बाई जी, सोच विचार करना व्यर्थ है, उपाय सोचना चाहिए।

चंचल—क्या उपाय सोचा जाय ? उपाय करना तो कठिन नहीं है, मैं स्वयं उपाय कर सकती हूं। आज भी क्षत्रियों में इतनी शक्ति है कि वे अपनी इज्जत की रक्षा कर सकें; पर भय केवल एक है, और वह यह कि मेरे उपाय करने पर सुख चाहने वाले—औरंगजेब के घृणित ससुर बनने को सम्मान समझनेवाले पिता का सुख नष्ट हो जायगा।

निर्मल—तब क्या करोगी बाई जी ? तुम्हारी जैसी अभिमानिनी क्षत्रिय बाला मुसलमान की पत्नी होकर कैसे रह सकती है ?

चंचल—मैंने अपने लिए उपाय निश्चित कर लिया है। यह देखो, यह कटार क्षत्रियकन्याओं की रक्षक है, मैं शाही महल में जाऊंगी; इसी कटार से बादशाह, उसकी बेगम और उसकी शाहजादी को क्षत्रियकन्याओं के साथ छेड़छाड़ करने का

मजा चखाऊंगी, पुनः इसी कटार से अपना भी अन्त कर लूंगी। क्यों, यह उपाय अच्छा है न ?

चंचलकुमारी की ये बातें सुन कर निर्मल का चेहरा तमतमा गया, निर्मल ने डरते डरते चंचलकुमारी की ओर देखा। निर्मल ने देखा, चंचल के मुखमण्डल पर आत्मसम्मान की ज्योति जाग रही है, निर्मल ने देखा कि उसका मुखमण्डल सतीत्व की प्रभा से प्रभासित हो रहा है, और उसने देखा कि उसके सामने चंचलकुमारी के रूप में एक देवी बैठी है, जिसका मुखमण्डल कर्तव्य की आभा से आभासित हो रहा है, इन बातों को देख कर वह एक बार विचलित हुई, कुछ डर गयी, पर पुनः बोली।

निर्मल—बाई जी, आप ने जो सोच रखा है वह अन्तिम उपाय है; जब तक प्राणों की रक्षा का उपाय निकल आवे तब तक प्राणों पर बाजी लगाना उचित नहीं; इसलिए मैं एकबात कहना चाहती हूं—क्या महाराना राजसिंह से इस समय सहायता लेना उचित न होगा ? उदयपुर का सिंहासन पवित्र है ! वह हिन्दूभावों की रक्षा के लिए आज भी उन्नत है ! यद्यपि आप के पिता और उनसे अनबन है, पर इससे कोई हानि नहीं। आप पिता की सहायता तो उनसे चाहती ही नहीं, आप तो एक हिन्दूबाला की रक्षा के लिए उनसे प्रार्थना करेंगी, मेरी समझ से कोई भी जवाबदार हिन्दू ऐसा न होगा कि जो किसी अबला की रक्षा करना अपना कर्तव्य न समझे। महाराना राजसिंह की अनबन विक्रमसिंह से है, विक्रमसिंह की कन्या के सतीत्व

से नहीं है। मेरा विश्वास है कि जब महाराना राजसिंह सुनेंगे कि एक क्षत्रियकन्या धर्म-संकट में पड़ी है, तो वे उस समय अपने सब संकटों की बात भूल जायंगे और तुम्हारी रक्षा के लिए दौड़े आवेंगे।

—तुम्हारा कहना ठीक है, महाराना का कुल ही ऐसा है, पर एक बात सोच लेनी चाहिए—क्या अपने प्राणों के लिये उस हिन्दू धर्मरक्षक को संकट में डालना उचित है ?

—बाईजी, आप इसे संकट क्यों समझती हैं ? ब्राह्मण के लड़के को तपस्या के लिए उत्तेजित करना उसको संकट में डालना नहीं है, यद्यपि तपस्या से उसे अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। क्षत्रिय बालक को दीनरक्षा के लिए आह्वान करना—भलेही इस काम में उसे प्राणों की बाजी लगाना पड़े—उसको संकट में डालना नहीं है। महाराना के कुल की प्रतिष्ठा का कारण क्या है, यह सोचलो। यदि महाराना धर्मरक्षा के लिए, हिन्दूभावों की रक्षा के लिए, इतना त्याग न करते, तो क्या यह सम्भव था कि उनकी इतनी प्रतिष्ठा होती ? क्या उनके तेजसे शाहंशाह दिल्लीपति का तख्ते ताऊस कभी हिल सकता ? बाई जी! महारानाके संकटकी चिन्ता आप छोड़ें, आप उनको अपनी अवस्था लिखकर भेजें और उनके कर्तव्य का स्मरण दिलावें। जो होगा, देखा जायगा,। आपने अपनी रक्षा का जो उपाय सोचा है उसकी सामग्री भी साथ रखिए, समय पर उचित सामग्री का उपयोग किया जायगा।

निर्मल की बातें सुन कर चंचल चुप रही । उसने थोड़ी देर सोचकर कहा, अच्छा, तुम जाओ और अनन्त मिश्र को भेज दो ।

चंचलकुमारी से मोतियों का एक हार और पत्र लेकर अनन्त मिश्र उदयपुर की ओर चला । उदयपुर पहाड़ियोंसे घिरा नगर है, वहां जाने के लिए कोई पक्की सड़क नहीं है, अनन्तमिश्र रास्ता भूल गया । उसे दो तीन आदमी मिले, उसने उन्हें व्यापारी समझा और उनसे उदयपुरका रास्ता पूछा । उनलोगोंने अपने साथ चलने के लिए कहा । अनन्तमिश्र उनके साथ आगे बढ़ा । थोड़ी दूर आगे जाने पर अनन्तमिश्र को मालूम हुआ कि जिन को उसने अबतक व्यापारी समझ रखा था वे व्यापारी नहीं, किन्तु डांकू हैं । उन डांकुओंने ब्राह्मणसे मोतियों का हार और पत्र छीन लिये, ब्राह्मण विवश था, क्योंकि वह डांकुओं द्वारा एक पेड़ में बांध दिया गया था । लुटेरे घने जङ्गल की ओर आगे बढ़े, थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर लुटेरों ने देखा कि एक सवार उन का पीछा कर रहा है, वे जल्दी जल्दी एक गुफा में जा छिपे । उस सवारने ब्राह्मण की दुर्दशा देखी थी, वह सवार सीधे कन्दरा के द्वार पर जाकर उपस्थित हुआ, कन्दरा का द्वार बन्द था, सवारने द्वार तोड़ दिया, सामनेही एक डांकू मिला, सवारने उसके दो टुकड़े कर डाले, उसके हाथ से मोतियों की माला, एक पत्र और कुछ मोहरें गिर पड़ीं, उस सवार ने तीन और लुटेरों को मार डाला, चौथा लुटेरा ज्योंही सामने आया, सवारने उस पर भी तलवार उठाई, उसने कहा, महाराजाधिराज, मैं आप की शरण में हूं, रक्षा कीजिए, मैं शपथ करता हूं कि आज से कभी यह नीच वृत्ति न

करूंगा, आपकी सेवासे कभी विमुख न होऊंगा। सवार ने पूछा—तू कौन है? उसने उत्तर दिया। मैं एक राजपूत हूं, मेरा नाम मानिकलाल है, आजतक मैं लुटेरोंका सरदार था, आज से महाराना का दास बना।

सवारने पूछा, तुमने मुझे पहचाना कैसे? उसने उत्तर दिया, कौन भारतवासी है जो महाराना राजसिंहको न पहचाने? महारानाने कहा—मैंने तेरी जीवरक्षा की, पर एक गरीब ब्राह्मणको तेरे द्वारा बड़ा कष्ट पहुंचा है, इसलिए तुझको कुछ न कुछ दण्ड अवश्य मिलना चाहिए; अपराधीको दण्ड न देना राजधर्मके विरुद्ध है। मानिकलाल इस बातसे घबड़ा गया, उसने हाथ जोड़कर महारानासे प्रार्थना की कि महाराना, यदि दण्ड देनाही उत्तम समझें तो कोई हलका दण्ड दें, जिससे मैं महारानाकी सेवाके योग्य रहसकूं। पुनः उसने कहा, महाराना, मेरा दण्ड तो हो चुका, मैं राजपूत होकर आज दीनताके शब्द बोल रहा हूं; राजपूतके लिए यह दण्ड थोड़ा नहीं है। महारानाने राजपूतके बायें हाथकी अंगुली काटली, और कहा, राजपूत, आजसे तू उदयपुर राज्यकी प्रजा होता है, तुझे अपने देश और राजाकी आज्ञाका पालन करना होगा, अपने देशकी रक्षाके लिए अधिकसे अधिक त्याग करना होगा। राजपूतने महारानाके पैर छुए और वह महारानाके पीछे आकर खड़ा हो गया।

लुटेरोंसे जो वस्तु मिली थी, उसमें एक पत्र भी था। महारानाने देखा वह पत्र उन्हींके नामका है, महाराना एक नदी के तीर पर जाकर बैठ गये और पत्र पढ़ने लगे, वह पत्र यो था

महाराना, आप उस पवित्र हिन्दू नृपतिके वंशधर हैं जिसने धर्मरक्षाके लिए अधिकसे अधिक त्याग किया है ! उत्तम हिन्दू-सूर्य के वंशधर हैं और स्वयं इस पदके योग्य हैं । धर्मकी रक्षाके लिए, हिन्दूभावोंकी रक्षाके लिए, आपका कुल और आप प्रसिद्ध हैं । इस समय जो पत्र आप पढ़ रहे हैं, वह एक दुःखिनी राजपूत कन्याका लिखा है, वह रूपनगरकी रहनेवाली है और राजा विक्रमसिंहकी कन्या है, आज वह विपत्तिमें फंसी है ! आज उसका सबसे अधिक मूल्यवान् धर्म सङ्कटमें पड़ा है ! इसी कारण आज वह आपकी सेवा में सहायताके लिए उपस्थित हुई है, अपनी धर्मरक्षाके लिए आप की शरणमें पत्र द्वारा आयी है । महाराना, रूपनगर एक छोटा राज्य है, पर मैं राजपूतकन्या हूं, इस समय धर्म संकटमें फंसी हूं, इस कारण श्रीमान् की दयाके लिए उपस्थित हुई हूं ।

महाराना, कुलाङ्गार क्षत्रियोंकी नीचतासे दिल्लीके मुसल्मान बादशाहोंको राजपूत राजकन्याओंसे ब्याह करनेका हौसला हो गया है । दिल्लीका शाहंशाह मुझसे भी ब्याह करना चाहता है, मेरे पिता इस संबंधसे बहुत गद्गद हो गये हैं, यदि किसीने रक्षा न की तो मैं दिल्ली भेजदी जाऊंगी, मेरे लेनेके लिए शाही सेना दिल्लीसे चल पड़ी है । एक राजपूत कन्या मुसल्मानी धर्मसे कैसे प्रेम कर सकती है ? क्या राजपूत बालाएं अब मुसल्मानोंसे ब्याह करें ? क्या भारतके क्षत्रिय अब अपनी कन्याओं, बहनोंके सतीत्व की रक्षा न कर सकेंगे ? क्या राजपूत कन्याओंके पति होनेकी योग्यता राजपूतोंमें नहीं रही ? महाराना, मैंने प्रतिज्ञाकी है कि मुसल्मानसे मैं ब्याह न करूंगी, भाग्यके सहारे बैठी हूं, राजपू-

स्त्रियोंका सहायक और धर्मरक्षक विष मेरे पास है। कल सन्ध्याको मैं यहांसे भेजी जाऊंगी, आपकी आशामें रहूंगी उस समय तक। यदि आपके हाथ मेरी रक्षाके लिए बढ़े शीघ्र पहुंचे, तो मेरा जीवन और धर्म दोनों बच जायंगे, नहीं तो दिल्लीके रास्तेमें मेरे प्राण जायंगे, दिल्लीके शाही महलोंमें मेरी लाश पहुंचेगी। महाराना, मैं यहीं प्राण दे देती, पर निरर्थक प्राण देनेमें कष्ट होता है, और आपसे निवेदन कर चुकी हूं, इसलिए आपकी प्रतीक्षा दिल्लीके नगरद्वार तक करूंगी; वहां तक यदि आप पहुंच गये तब तो मैं जीवित रहकर अपने धर्मकी रक्षा कर सकूंगी, यदि मेरे अभाग्यसे आपके हाथ मेरी रक्षाके लिए नहीं बढ़े, तो स्वयं विषके द्वारा अपने धर्मकी रक्षा करूंगी।

महाराना, मैंने अपनी रक्षाके लिए केवल आपसे ही निवेदन किया है। अम्बर, जोधपुर आदिके राजाओं से निवेदन करना मैंने अपने लिए अपमान समझा। उन लोगोंने स्वयं मुसल्मानोंको बेटी, बहनें देना गौरवकी बात समझी है। वे धर्म खो चुके हैं। उन लोगोंने सांसारिक धनलोभको धर्मसे अधिक महत्व दिया है। ऐसे लोग निबल होते हैं। क्या निर्बल किसीकी रक्षाकर सकता है? मेरी दृष्टिमें समस्त भारतवर्षमें एक आपही हैं जिन्हें दीन, दुःखियों की रक्षाका अधिकार है! आप उस प्रतापके वंशधर हैं जिसने अपना समस्त जीवन दुःखमें बिताया, पर अपने धर्मकी रक्षा की! आप उस राजर्षिसांगाके कुलदीपक हैं जिसने धर्मरक्षाके लिए अपने प्राण दिये! आप उस बप्पा रावलके कुलदीपक हैं जिसकी जय पताका दिगन्तोंमें गड़ी है! इसीसे आज एक दुःखिनी राजपूत

कन्या अपने धर्मकी रक्षाके लिए आपसे निवेदन करती है। उस राजपूत कन्याने प्रतिज्ञाकी है कि यदि मेरी धर्म रक्षा नहीं हुई तो मैं अपने प्राण दे दूंगी। महाराना, आप अबलाकी रक्षाके लिए अपनी तलवार उठाइए। आप अपने वीर राजपूतोंको क्षत्रियधर्मका स्मरण कराइए। यह राजकन्या आपकी दासी बनकर रहनेको अपने गौरवकी बात समझती है, पर मुसल्मान बादशाहके शाही महलोंकी महारानीके पदको भी घृणाकी दृष्टिसे देखती है। यदि आप एक राजपूतकन्याके सतीत्व धर्मकी रक्षाका कुछभी महत्त्व समझते हों तो मेरी रक्षा कीजिए, सिवाय आपके दूसरा धर्मरक्षक नहीं है।

महाराना ने पत्र समाप्त किया, उसी समय उन्होंने अपना कर्तव्य भी निश्चित कर लिया, उसी पत्र के साथ एक दूसरा भी पत्र था जो निर्मल बाई का लिखा हुआ था। वह पत्र यों था—

महाराना, राजपूतकन्या की लाज राजपूतों के हाथ है। आज यद्यपि वैसे राजपूत अधिक नहीं हैं जो राजपूतकन्याओं के धर्म की रक्षा करना अपना पवित्र कर्तव्य समझते हों, पर उनका अभाव नहीं है। अभी भारत में सीसोदिया वंश मौजूद है, बप्पा और सांगा का रुधिर सीसोदिया के वीर राजपूतों की नस में आज भी उछल रहा है, इसलिए मेरा विश्वास है कि समय पर यदि यह पत्र श्रीमान् को मिल गया तो राजपूतकन्या की लाज अवश्य बच जायगी। आपको केवल संकट की सूचना दे देनाही काफी है, आप स्वयं कर्तव्यदक्ष और विद्वान् हैं। आप द्रौपदी और रुक्मिणी के कष्टों की बात जानते हैं। आज की भी

द्रौपदी और रुक्मिणी के समान जीवनमरण के सन्धिस्थान पर खड़ी है। आप कृष्ण बन कर उस की लाज रक्खें। जिस समय राजकुमारी का पत्र आप पढ़ रहे होंगे उसी समय राजकुमारी का पुरोहित अनन्तमिश्र आप के गले में मोतियों का हार पहनावेगा, उसे आप राजकुमारी का प्रणयोपहार समझें।

दोनों पत्र महारानाने पढ़ लिये। दिल्ली के सम्राट् का असीम बल, उस की अतुल सेना आदि महाराना जानते थे, पर इन के डर से वे अपना कर्तव्य छोड़ने वाले नहीं थे। महाराना उन्नतात्मा थे। उन्नतात्मा किसी भय के कारण अपने कर्तव्य की अवहेला नहीं करते। महाराना ने अपना कर्तव्य निश्चित किया। उन्हों ने मानिकलाल से कहा—इस पत्र की बात तुम जान गये हो, इस समय तुम घरजाओ, यह लो, रुपये लिये जाओ, घर से होकर शीघ्र उदयपुर आजाओ, इस पत्र की चर्चा किसी से भी मत करना।

मानिकलाल घर गया, महाराना भी चले, रात्रि में अपने साथियों से उन की भेंट हुई, महारानाने अपने साथियों से कहा—वीरो, हम एक लड़ाई में जा रहे हैं, हमारी संख्या बहुत ही थोड़ी है, हमसब मिलाकर ५० से अधिक नहीं हैं। इन ५० आदमियों के सहारे हम दिल्ली के सम्राट् का सामना करने जा रहे हैं। इस लड़ाई में जीत हो चाहे हार, दोनों अवस्थाएं सङ्कट की हैं, दोनों दशाएं भयङ्कर हैं! जो इस सङ्कट की परवा करते हों उन्हें उदयपुर लौट जाने की महाराना आज्ञा देते हैं।

की बातें सुनतेही उनके साथी विस्मित हो गये,

सभीने एक स्वरसे कहा, क्या महाराना हमलोगों को कायर समझते हैं, जो वे उदयपुर जाने की आज्ञा देते हैं? क्या हमलोगोंने क्षत्राणियों का दूध नहीं पिया है। राजपूत कर्त्तव्य पालन करना जानते हैं। सङ्कटों की परवा करना, सङ्कटों के भय से कर्त्तव्यसे विचलित होना राजपूतों का कर्तव्य नहीं! महाराना जिस लड़ाई में जाना चाहते हों खुशी से जायं, हमलोग उनके साथ रहेंगे।

वीर राजपूतों की बातों से महाराना गद्गद् हो गये। पचास राजपूतों की टुकड़ी रूपनगर की ओर चली, और वहां पहुंच कर एक गुप्त स्थान में छिप कर बैठ गयी। महाराना उन के साथ थे, वहां बैठे सबलोग अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

मानिकलाल को अपने घर से होकर उदयपुर जाने की महाराना ने आज्ञा दी थी, पर वह घर नहीं गया और न उदयपुरही गया। वह सीधे रूपनगर चला आया, मुगलसेना का उसने पता लगाया, पुनः महाराना के आने का पता लगाया, इतना काम कर चुकने पर वह मुगल का वेश धर कर मुगलों में जा मिला।

समय आगया। चंचलकुमारी के दिल्ली भेजने की सब तैयारी होगयी, उसका शृंगार किया गया, वह चुपचाप सब कामों में योग देने लगी, जैसा करने को उससे कहा गया वैसा ही उसने किया। उसकी सहचरी निर्मल यह सब देख रही थी, उसकी आंखें भीतर से तर थीं, पर ऊपर से सूखी मालूम होती थीं। चंचल ने उससे पूछा—उदास होने से लाभ?

उसने उत्तर दिया—कुछ नहीं, पर दुःख होता है, जब सोचती हूं कि मेरी एक सखी शीघ्र ही इस संसार से कूच करनेवाली है।

चंचल—नहीं, ऐसा मत सोचो। मैं कायर नहीं, मैं डरपोक नहीं, दिल्ली पहुंचने तक तो मैं अपने प्राण छोड़ती नहीं, पीछे क्या होगा, सो देखा जायगा; अभी भी तो काफ़ी समय है।

समय आ गया, मुगलसेना रथ लिए द्वार पर खड़ी थी, चंचलकुमारी रथपर बैठ कर विदा हुई। सेना के साथ वह दिल्ली के शाही महल में दाखिल होनेके लिए चली। बादशाही सेना प्रसन्न थी, वह आगे बढ़ी, रूपनगर दस मील पीछे छूट गया, रास्ते में पहाड़ पड़ा, उसी में होकर एक पतला रास्ता दिल्ली जाने का था, वहां पहुंचतेही किसी के गानेकी आवाज़ आयी, वह आवाज़ सब ने सुनी, पर किसी ने उस आवाज़ का अर्थ नहीं समझा, पर चंचलकुमारी उस आवाज़ को सुन कर बहुत प्रसन्न हुई, वह नये बल से बलवती हुई, वह मन ही मन भगवान् की प्रार्थना करने लगी। इसी समय मुगलों की सेना पर पत्थर बरसने लगे, पत्थरों की घनघोर वृष्टि होने लगी, पर पत्थर बरसानेवालों को किसी ने नहीं देखा, इसबात से मुगल बहुत घबड़ाये, पत्थर पड़ते थे केवल मुगलों पर। मुगलों की सेना के बीच में ही चंचलकुमारी का रथ था, पर उसपर एक भी पत्थर नहीं गिरा, यह आश्चर्य की बात थी। मुगल लाचार हो गये, वे न आगे बढ़ सकते थे, और न पीछे लौट सकते थे।

अपने सेनापति की आज्ञासे बादशाही सेनाने जिधरसे पत्थर आते थे उधर की ओर गोली चलाना शुरू किया। इससे महाराना के कुछ आदमी मारे गये। मुगलसेनापति ने अपनी सेनाको व्यूह खड़ी होनेकी आज्ञा दी सेना अपने सेनापति का आज्ञा

का पालन करने लगी, महारानाने भी सीटी देकर अपनी सेनाको कर्तव्य बताया। राजपूत महारानाकी आज्ञाके अनुसार अपना स्थान बदल रहे थे, उसी समय एक सुन्दरी स्त्री आकर उनके सामने खड़ी हुई। महारानाने पूछा—आप कौन हैं ?

स्त्रीने उत्तर दिया—महाराना मुझे क्षमा करेंगे, जो मैं स्त्रीजनोचित लज्जाका त्यागकर महारानाके सामने आयी हूं। मैं धर्मसङ्कटमें पड़ी हूं। सङ्कटपतित मनुष्य लज्जा कैसे कर सकते हैं ?

महाराना—आप क्या कहना चाहती हैं ?

स्त्री—मैं दिल्ली जाना चाहती हूं, आप युद्ध बन्द करें।

महाराना—खुशीसे आप दिल्ली जायं ! पर तब तक आप यहांसे हटभी नहीं सकतीं, जब तक मैं अपने कर्तव्यका पालन न कर लूं। आपने अपने धर्मकी रक्षाके लिए मुझे निमन्त्रित किया था, उसी निमन्त्रण पर मैं आया हूं, अब मेरा कर्तव्य है कि मैं आपका इस समयका धर्मसङ्कट टाल दूं; यदि न टाल सकूं तो प्राण दे दूं। इतना काम करनेके पश्चात् आप जा सकती हैं, मैं कभी नहीं रोकूंगा।

स्त्री—महाराना, क्या मेरे निमन्त्रण को भूल न जायंगे ? क्या एक लड़की की चञ्चलता समझ कर आप उस निमन्त्रण की उपेक्षा नहीं करेंगे ?

महाराना—नहीं, आर्तनाद की उपेक्षा करना महारानाके वंशधरोंने नहीं सीखा है ! अबलाकी पुकार पर ध्यान न देना भारतीय क्षत्रिय नहीं जानते हैं ! आप घबड़ायं न, मैं शीघ्रही इस युद्धका निपटारा कर देता हूं या तो मैं अपने आदमियों

सहित मर मिटता हूं; या मुगलसेना को ही खतम किये देता हूं—उस समय आपको अधिकार होगा अपनी इच्छाके अनुसार जानेका। अभी यदि मैं आपको जानेकी आज्ञा दूं तो मुगल सेना समझेगी कि महाराना डर गया। क्या मैं यह कलङ्क जीतेजी महाराना वंश पर लगने दूंगा?

स्त्री—महाराना, विष मेरे साथ है। आप आज्ञा नहीं देते, तो मैं विष खाकर प्राण दे देती हूं।

महाराना हंसे और हंसकर उन्होंने कहा—महाराना खुद मरनेसे नहीं डरता, आपका मरना महारानाके लिए कुछ विशेष घटना नहीं होगी। कर्तव्यके आड़े आने वाले किसी की भी मृत्यु की परवा महाराना नहीं करता।

स्त्रीने सिर झुकाया। उसने वीर चूड़ामणि महाराना को मनही मन प्रणाम किया। वह वहांसे मुगलसेनामें आयी, आकर उसने सेनापतिको बुलाया। सेनापतिके सामने आने पर उसने कहा—मैं रूपनगर की राजकुमारी हूं, तुम इस सेनाके साथ मुझेही लेने को आये हो। तुम ध्यान देकर मेरी बात सुनो।

सेनापति—मैं आपकी आज्ञा सुननेको तैयार हूं, आपकी आज्ञाओं का पालन भी मैं करूंगा, यदि वह शाही आज्ञाके विरुद्ध न हो।

राजकुमारी—मुसलमान बादशाहके साथ ब्याह करना हमारे धर्मके प्रतिकूल है। हमारा पिता कमजोर है, इस लिए वह डर कर मुझे दिल्ली भेज रहा है। मैंने अपने धर्मकी रक्षाके लिए उदयपुरके महारानाको बुलाया है। पर यह दुःख की बात है

कि उनके साथ केवल पचासही आदमी हैं, इसीसे तुम उनके बलका अनुमान कर सकते हो।

सेनापति—क्या पचासही आदमियोंने हमारी इतनी बड़ी सेनाको व्याकुल कर रखा है, यह कैसे मुमकिन समझा जाय?

राजकुमारी—मुगलसेनापति, तुमने हल्दी घाट की लड़ाई की बात नहीं सुनी है? राजपूत संख्या की परवा नहीं करते। चाहे शत्रुसेना कितनीही बड़ी क्यों न हो, वे उससे भयभीत नहीं होते; पर मैं नहीं चाहती कि खूनखराबा हो। तुम मुझको लेने आये हो, मैं दिल्ली जाने को तैयार हूं।

इस बातसे मुगलसेनापति आनन्दित हुआ। उसने समझा कि अब राजपूतों में दम नहीं रहा, इसी लिए राजकुमारी उनको बचाने के लिए यह चाल चल रही है। उसने कहा—राजपूतों को—इन लुटेरों को—बिना दण्ड दिये मैं यहां से नहीं हट सकता।

राजकुमारी—अच्छा, तो तुम मेरा कहना मानने के लिए तैयार नहीं हो।

मुगलसेनापति—मुझे कोई उज्र नहीं, जब आप चलने को तैयार हैं तो।

राजकुमारी ने बातों में मुगलसेनापति को कुछ देर के लिए उलझा रखा, वह बीच बीच में राजसिंह की ओर देख रही थी, जब उसने देखा कि राजसिंह अपने आदमियों के साथ सुरक्षित स्थान में पहुंच गये, तब वह मुगलसेनापति के पास से हट कर राजसिंह के पास गयी। उसने महाराना राजसिंह से कहा महा

राना, अब लड़ाई रुक नहीं सकती, कृपाकर तलवार दीजिए, मैं भी आप की सेवा करना चाहती हूं।

महाराना—देवी, लीजिए, यह तलवार है, पर इसका उपयोग आप तब तक नहीं कर सकतीं, जब तक महाराना रणक्षेत्र में खड़ा है। स्त्रियों की सहायता से महाराना ने विजय पायी यह बात मैं सुनना नहीं चाहता।

राजकुमारी—महाराना को ऐसी बातें न कहनी चाहिए, स्त्रियों की सहायता से युद्ध जीतना कलङ्क की बात नहीं, लज्जा की बात नहीं ! वह जाति धन्य है जिसने वीर पुरुष और वीर स्त्री उत्पन्न किये हैं ! महाराना, यदि स्त्रियां कायर होंगी, बुजदिल होंगी, क्या आप समझते हैं उस दशामें पुरुष वीर हो सकते हैं ?

अररधम् ! मुगलसेना व्याकुल हो गयी, पीछे से मुगलसेना पर किसी ने धावा कर दिया, मौका देखकर महाराना ने भी अपना काम प्रारम्भ कर दिया। मुगलोंने मैदान छोड़ दिया। वे भाग खड़े हुए। महाराना चञ्चलकुमारी को साथ लेकर उदयपुर आये।

उदयपुर पहुंचने पर लोगों को मालूम हुआ कि मुगलों पर पीछे से जो चढ़ाई हुई थी, वह मानिकलाल की चतुरता और कार्यदक्षता का फल था, वह मुगलों के वेश में था ही, जब उसने देखा कि अब गहरी लड़ाई छिड़नेहीवाली है, तब वह शीघ्र रूपनगर पहुंचा और वहां से राजा की सेना कौशल से ले आया और उस सेना की सहायता से मुगलों की सेना को उसने तितर बितर कर दिया।

महाराना ने जब यह बात सुनी तो वे बहुत प्रसन्न हुए, उन्हों ने मानिक लालको अपने विश्वासी मित्रोंमें समझा। मानिकलाल भी महाराना की सेवा निष्कपट होकर करने लगा।

चञ्चलकुमारी महाराना के महल में रखी गयी थी। एक दिन महाराना ने उन्हें बुलाकर पूछा—राजकुमारी, अब आप क्या चाहती हैं? आप की आज्ञा के पालन का मैंने प्रयत्न किया, और एकलिङ्ग नाथ की कृपा से मुझे उसमें सफलता मिली। अब आप जो चाहती हों कहें, मैं उसका प्रबन्ध कर दूंगा। यदि आप रूपनगर जाना चाहती हों तो कहें, मैं आप के वहां जानेका प्रबन्ध कर दूं।

राजकुमारी—महाराना, आप ने मेरा हरण किया है, पहले भी क्षत्रियों में ऐसी घटनाएं हुई हैं, चाहे वे प्रशंसनीय न समझी जाती हों।

महाराना—राजकुमारी, मैंने आपका हरण नहीं किया है, आप ने अपनी रक्षा के लिए मुझे बुलाया था, मैं उसी आप की आज्ञा का पालन करने के लिए गया था, और वहां जाकर आपको मुसलमानों के हाथ से छुड़ाया, अब आप जहां जाना चाहें, कहें, मैं आपको वहां भेजवा दूं।

राजकुमारी—मैं महाराना की शरण आयी हूं।

महाराना—यह ठीक है, पर इस विषय में मैं आप के पिता की सम्मति ले लेना चाहता हूं, इसलिए आप एक बार रूपनगर जायं।

राजकुमारी—महाराना, जिस स्थानसे मैं दिल्लीके मुसलमान को सौंपी जाती थी, जो पिता मेरे धर्मकी ओर न देखकर अपने स्वार्थके लिए विजाति से ब्याहना चाहता था, वहीं—उसी के यहां महाराना, मुझे पुनः भेजना चाहते हैं?

महाराना चुप हो गये, उन्होंने राजकुमारी की ओर देखा। उन्होंने एक विशुद्ध देवी की मूर्ति देखी और उस मूर्ति को महारानी कह कर अपने पास बैठाया। एक अच्छे मुहूर्त में रूपनगर की राजकुमारी का ब्याह महाराना से हुआ। रूपनगर से निर्मल बाई भी आगयी थीं और वे मानिकलाल से ब्याही गयीं।

यह तो असम्भव था कि औरङ्गजेब इस खबर को न सुनता और सुनकर वह चुप हो जाता। इस खबरके सुनतेही वह आगबबूला हो गया। उसका क्रोध केवल महाराना या उनके राज्य परही नहीं हुआ, किन्तु वह हिन्दु जाति और हिन्दू धर्म का कट्टर शत्रु बन गया। वह हिन्दुओं को सताने लगा, हिन्दू धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने लगा, हिन्दू देवमन्दिरोंको तुड़वाने लगा, देवमूर्तियों का अंग भंग करने लगा। हिन्दुओं पर उसने जजिया नामक कर लगाया।

महाराना राजसिंहने उस की ये करतूतें सुनीं और देखी, उन्होंने औरंगजेब को एक पत्र लिखा, पर उस पत्र का क्या प्रभाव पड़सकता था! औरंगजेबका काम जारी रहा, उसका हिन्दुद्वेष बढ़ता गया, उस के अत्याचार में कमी नहीं हुई।

महाराना इस बात को जान गये थे कि खिसियानी बिल्ली के समान औरंगजेब अवसर देख रहा है, अवसर मिलतेही वह उदयपुर पर बड़े जोर शोरसे चढ़ाई करेगा, उसे नष्ट भ्रष्ट करने के लिये जितना वह कर सकता है उतना करेगा; इसलिए महाराना ने सब से पहले अपनी सेना पर ध्यान दिया। वे सैनिकोंकी शिक्षा देने लगे। महाराना के इस काममें महारानीने भी सहायता

दी। उदयपुर की सेना संख्या में अधिक नहीं, किन्तु निपुणता में अजेय हो गयी। उदयपुर की सेनाको लेकर महाराना बड़ेसे बड़ा देशशत्रुका सामना करनेके लिए तैयार हो गये, बड़ेसे बड़ा धर्मशत्रु को नीचा दिखाने की सामग्री एकत्रित कर वे सिंह के समान निर्भय विचरने लगे। उदयपुरमें देश और धर्मकी रक्षा के लिए एक नया उत्साह फैल गया, एक नयी ज्योति का प्रवाह बहने लगा।

महारानाकी सोची बात सच्ची हुई, और औरङ्गजेब एक बहुत बड़ी सेना लेकर उदयपुर पर चढ़ गया। उसने उदयपुरको मिट्टीमें मिला देनेकी प्रतिज्ञा करली थी। पर क्या कोई किसीको मिट्टीमें मिला सकता है? क्या मनुष्यकी यह शक्ति है कि वह एक मनुष्यको नेस्तोनाबूद करदे? असम्भव है; शक्तिमान्से शक्तिमान् भी मनुष्य यदि वह अत्याचारी है, यदि उसका पक्ष अधर्म युक्त है, तो वह कभी किसीको दबा नहीं सकता। यह ठीक है कि औरङ्गजेबके पास सेना अधिक थी, उसके पास लड़ाईका सामान अधिक था; पर वह अत्याचारी था, उसका पक्ष अधार्मिक था, वह विजयी कैसे होसकता था? महाराना के कौशलसे, सीसोदिया वीरोंकी वीरतासे, औरङ्गजेबकी सेनाको व्याकुल होना पड़ा। उसकी सेना व्याकुल होगयी, वे मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए। औरङ्गजेबकी सेनामें खलबली मच गयी, राजपूतोंने बादशाहके बहुत सामान लूट लिये, उदयपुरी जोधपुरी बेगमें और शाहजादी जेबुन्निसा कैद हुईं, जोधपुरी बेगम तो बड़े सम्मानके साथ औरङ्गजेबके यहां भेजदी गयीं पर उदयपुरी बेगम और शाहजादी जेबुन्निसा कैद हुईं

उदयपुरी बेगमही इस झगड़ेकी जड़ थी, उसीने रूपनगरकी राजकुमारीसे हुक्का भरवानेकी प्रतिज्ञाकी थी, शाहजादी जेबुन्निसाने उदयपुरी बेगमकी सहायताकी थी, इन्होंने भी राजकुमारीसे पैर दबवानेकी प्रतिज्ञाकी थी, पर आज समयके प्रभावसे इनदोनों को राजकुमारीकी कैदी होना पड़ा। जेबुन्निसाके साथ तो महारानीका बर्ताव बहुत अच्छा हुआ। जेबुन्निसाने भी महारानीके साथ बड़ी नम्रता और सभ्यताका व्यवहार किया। पर उदयपुरी बेगमको हुक्का भरना पड़ा। कैदी होने परभी उसकी क्रूरता नहीं गयी थी, वह कैदीकी दशामें भी अपनी शेखी नहीं छोड़ती थी, इसका फल उसे मिला। महारानीने उसे तबतक नहीं छोड़ा जब तक उसने हुक्का भरकर महारानीके सामने न रखा। औरङ्गजेबने भी महारानासे सन्धि की। महाराना यह जानते थे कि इस सन्धिका कुछ मूल्य नहीं, पर व्यर्थ प्राणनाश न हो इसलिये उन्होंने सन्धि करली।

दिल्ली पहुंचनेके कुछ दिनों बाद औरंगजेबने सन्धिपत्र फाड़डाला। उसने अपनी प्रतिज्ञा तोड़दी, वह अवसर पाते ही उदयपुर पर चढ़ आया। महारानाकी सेना यद्यपि निर्बल थी फिर भी महाराना अपने कर्तव्यपालनसे विचलित नहीं हुए। उस समय राठौर वीर दुर्गादासकी सहायता भी मिलगयी थी, औरङ्गजेब उदयपुर पर चढ़ आया, पर उस की एक न चली, वह फिर हताश होकर लौट गया।

रूपनगरकी राजकुमारीकी जीवनघटनाएं समाप्त हुईं। अब हम इस पुस्तक के वाचक और वाचिकाओं से इन घटनाओं

पर विचार करने का अनुरोध करेंगे। वे देखें कि इन घटनाओं से रूपनगर की राजकुमारी के किस महत्त्व, किस गौरव, किस सामीद्यकारिता का परिचय मिलता है ? यदि वह उदयपुरके महाराना को अपना शत्रु समझती तो क्या सम्भव था कि उस का जीवन पवित्र होता ? क्या यह सम्भव था कि वह अपने शत्रुको नीचा दिखाती ? यदि उस को आत्मगौरवका बोध न होता तो बादशाह के महलों में जाने से उसे कभी घृणा न होती, कितनी ही बड़े बड़े राज्यों की राजकुमारियां बादशाही महलोंमें गयी थीं, रूपनगरकी बिसात ही क्या थी ? पर रूपनगरकी राजकुमारी अपने आत्मगौरवका अभिमान रखती थी, उसके आत्मगौरवने बतला दिया था कि—

(१) अपना देशवासी शत्रुभी हो तौभी उसका आश्रय ग्रहण करना, उसकी दासी बनना अच्छा है।

(२) उसके आत्मगौरवने बतला दिया था कि सांसारिक सुखों की अपेक्षा धर्म बड़ा है, धर्म के लिए चाहे जितना त्याग करना पड़े करना चाहिए।

(३) उसके आत्मगौरवने उसे उपदेश दिया था—चाहे जितना बड़ा सङ्कट पड़े हताश मत हो, धीरतासे उपाय करो, सफलता मिलेगी।

(४) उसके आत्मगौरवने कहा था, निष्काम होकर उपाय करो।

(५) और उसके आत्मगौरव को समीद्यकारिता की सहायता मिली और उसका नाम अमर हुआ

ग्रन्थनिर्माण और कवित्व

ज्ञानके परिपक्व होने का फल है ग्रन्थ निर्माण। ज्ञान अर्जन करना, विद्वान् बनना, और बस ज्ञान तथा विद्यासे अपना कल्याण करलेना कुछ कठिन नहीं है। ऐसे बहुत हैं जो ज्ञानी हैं, जो विद्वान् हैं और जिन्होंने अपना कल्याण किया है। पर वैसों की संख्या बहुत कम पायी जाती है जो अपने ज्ञान और विद्या से दूसरों का कल्याण करते हों; या करनेकी योग्यता रखते हों। यह बात नहीं है कि अपने ज्ञान और विद्यासे दूसरों के कल्याण कोई चाहे ही नहीं; नहीं, चाहने वालोंकी कमी नहीं है, पर उस के लिए योग्यता प्राप्त करना कठिन है। केवल ज्ञान या विद्या के अर्जनसे यह काम नहीं हो सकता, इस के लिए ज्ञान के परिपक्व होने की जरूरत होती है, विद्या की पारदर्शिता की आवश्यकता होती है। वह जरा कठिन है। जिस का ज्ञान पर पूरा अधिकार न हो क्या वह अपना ज्ञान दूसरों तक पहुंचा सकता है? क्या वह कोई अपना सिद्धान्त कायम कर सकता है? अथवा अपने सिद्धान्तको साबित करनेके लिए मजबूत दलीलें पेश कर सकता है? नहीं, कभी नहीं। इसी से ग्रन्थकार विद्वानों की अपेक्षा अधिक महत्वकी दृष्टि से देखे जाते हैं, उन पर अधिक उत्तरदायित्व समझा जाता है।

भारतीय ग्रन्थकार पुरुषों की कमी नहीं, पर उन पुरुषों में जब हम स्त्रियों की भी काफी संख्या देखते हैं तब विशेष आनन्द होता है। आश्चर्य होता है आजकल के अपने विचारों पर, जिन स्त्रियोंने इतनी बड़ी योग्यता का परिचय दिया था, उन के विषय की अपने लोगों की गन्दी धारणा पर। यह दुःख की बात नहीं है कि जिन स्त्रियोंने ग्रन्थनिर्माण करने का अधिकार पाया था, जिन लोगोंने कविता करने की शक्ति पायी थी, आज हम उन्हें पुरुष-मनोरञ्जिनी विद्या सिखानेमें व्यस्त हो रहे हैं, आज हम उन्हें पुरुष-सेविका मात्र समझ रहे हैं। नये विचारोंवाले और पुराने विचारों वाले दोनों ही इस विषय में एक हैं। दोनोंही अपनी अपनी रुचि के अनुसार स्त्रियों को अपनी सेवाकी योग्यता प्राप्त करने की शिक्षा देना चाहते हैं, और फिर अपनी उन्नति भी चाहते हैं। इसी का नाम दिमाग फिर जाने का रोग कहते हैं। जो स्त्रियों को विचार सम्बन्धी गुलामी देने के पक्षपाती हैं क्या वे यह भी चाहते हैं कि स्त्रियों द्वारा उनके कार्योंमें सहायता मिलेगी? यदि ऐसा वे सोचें तो यह उनकी भूल है, नासमझी है। सहायता शक्तिके द्वारा दी जाती है। जिसके पास शक्ति नहीं वह भला किसीकी क्या सहायता कर सकता है? वह तो स्वयं सहायताके लिये दूसरेका मुंहतका बना रहेगा। यह बात निश्चित है कि शक्ति स्वाधीनताके द्वारा उत्पन्न होती है। हमतो स्त्रियोंको पराधीन बनानेके लिये तुले बैठे हैं। हम उन्हें केवल पुरुष-मनोरञ्जिनी विद्या सिखाना चाहते हैं, उन्हें ऐसी कोई विद्या पढ़ाना नहीं चाहते, जिनके द्वारा वे स्वाधीनता पूर्वक कुछ सोच सकें। फिर

उनके विचार प्रौढ़ कैसे हो सकते हैं ? फिर वे शक्तिमयी कैसे हो सकती हैं ? पर नहीं, हमलोग उनकी सहायता चाहते हैं, हमलोग अपने प्रत्येक कार्यमें उनका सहयोग चाहते हैं और इन सबके द्वारा अपनी उन्नति। कहिये, यह विशुद्ध मूर्खता नहीं है ?

भारतीय अनेक स्त्रियोंने ऋषिका पद पाया है, उनलोगोंने वेद-मन्त्रोंका आविष्कार और प्रचार किया है। आजभी उनका नाम वेदमन्त्रोंके ऋषिके स्थान पर दीख पड़ता है। विश्ववारा, वाक्, अपाला, अदिति, यमी, शश्वती, घोषा, सूर्या, जुहू, इन्द्राणी, गोधा, श्रद्धा, रोमशा आदि अनेक स्त्रियोंका नाम वेदमन्त्रोंके साथ जुटा हुआ है। यह इनकी तपस्याका, इनके अध्ययनका इनकी विचार शक्तिका उज्ज्वल उदाहरण है। अब हम दो तीन अपेक्षाकृत नवीन स्त्रियोंका परिचय कराना चाहते हैं, जिससे हमलोगों का स्त्रियोंके सम्बन्धका अज्ञान दूर हो।

लक्ष्मी (१)

ये मिथिलाके महाराज चन्द्रसिंहकी महारानी थीं। इनके पितृकुलके विषयमें कुछ भी पता नहीं। महाराज चन्द्रसिंह स्वयं विद्यानुरागी और विद्वान् थे। उनकी सभामें बड़े बड़े पण्डित रहते थे। सौभाग्यसे महाराज चन्द्रसिंह को महारानी भी विदुषी मिल गयी थीं। श्रीमती लक्ष्मी साधारण पण्डिता नहीं थीं, दर्शनशास्त्र धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र आदिमें इनका प्रगाढ़ पाण्डित्य था। ये बड़े २ पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ किया करती थीं। "विवादचन्द्र" नामक पुस्तक महाराज चन्द्रसिंह के सभापण्डित मिसरूमिश्र ने बनाय

था। याज्ञवल्क्य की प्रसिद्ध टीकाका निर्माणभी चन्द्रसिंहको ही सभामें हुआ था, इसके निर्माता थे राजाके सभापण्डित बालंभट्ट।

मिताक्षरा यद्यपि याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका है, तथापि याज्ञवल्क्यस्मृति से वह कम कठिन नहीं है। मिताक्षरामें अनेक मौलिक विषयों का विचार है, उसके विचार बड़ेही प्रौढ़ हैं। धर्मशास्त्र का वह एक कठिन ग्रन्थ समझा जाता है। लक्ष्मी का ध्यान इस ओर गया, उन्होंने समझा कि मिताक्षरा से याज्ञवल्क्यस्मृतिकी कठिनता तो दूर हुई नहीं, एक और कठिन ग्रन्थ की संख्या बढ़ी। इस बातको सोचकर उन्होंने मिताक्षराकी टीका बनाई। मिताक्षरा जैसे कठिन ग्रन्थ की टीका बनाने की योग्यता साधारण योग्यता नहीं है।

मधुरवाणी (२)

ये दक्षिण भारतकी रहनेवाली थीं। तंजोर के राजा रघुनाथ की सभाकी ये पण्डिता थीं। यह राजा प्रसिद्ध रामभक्त और विद्याव्यसनी था। इसकी सभामें बहुतसे पण्डित और पण्डिताएं रहती थीं, उस राज सभामें मधुरवाणी विशेष प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखी जाती थीं।

एक दिन राजसभा में साहित्यचर्चा हो रही थी, पण्डिताएं और पण्डित एकत्रित थे। बहुतोंने अपनी रचनाएं सुनायीं। मधुरवाणीका जब अवसर आया, तब इन्होंने भी अपनी कविता पढ़ सुनाया। इनकी कविता में रामचरित का वर्णन था और वह वर्णन बड़ेही मनोहर ढंगसे था। राजा उस वर्णनसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने मधुरवाणीकी कईबार प्रशंसा की और कई

बार पढ़वा कर सुना। उसी समय राजाके मनमें एक बात आयी, राजाने अपने पण्डितोंसे कहा, रामचरित मैं बार बार सुनता हूं, पर मुझे उनमें एक प्रकारकी कमी मालुम-पड़ती है, उन वर्णनोंसे मुझे पूरा पूरा आनन्द नहीं मिलता। मैं चाहता हूं, मेरी सभाके कोई पण्डित इस कामको करें। जो इस कामको परिश्रमपूर्वक करेगा, उसका सम्मान राज करेगा। राजाकी इच्छा सभीने सुनी, पर किसीने भी रामचरित बनानेकी स्वीकृति नहीं दी। इस बातसे राजा विशेष चिन्तित हुए। उनके हृदयमें पण्डितोंके प्रति एक हलकीसी अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उस दिनकी सभा समाप्त की गयी। राजा उठकर अपने दूसरे काममें लगे, पण्डित लोग भी अपने अपने घर चले गये। मधुरवाणीने भी ये सब बातें देखीं, इनको कईबार इच्छा हुई कि मैं रामचरित बनानेका भार ले लूं पर विनयके मारे अपने मुंहसे इन्होंने कुछभी नहीं कहा; येभी अपने घर चली गयीं।

जो विचार किसी मनुष्यके हृदयमें उग्ररूप धारण करलेते हैं, जिस विचारकी पूर्तिके लिए मनुष्य अधीर हो जाता है, पर उसकी पूर्तिके उपाय उसे नहीं सूझते, तब प्रायः रातको स्वप्नमें उसे कुछ उपाय सूझ आते हैं। राजा रघुनाथके हृदयमें भी रामचरित निर्माण करानेका विचार बद्धमूल होगया था, उसने रातको देखा कि भगवान् रामचन्द्र आये हैं; उन्होंने राजासे कहा, वत्स! चिन्तित क्यों होते हो! तुम हमारा पूर्ण चरित बनवाना चाहते हो, यह अच्छी बात है! तुम्हारा विचार सुन्दर है! तुम इस कामके लिए मधुर

वाणीसे कहो, वह इसके लिए योग्य है। उससे कहोगे तो वह अवश्य स्वीकार करलेगी।

राजाने मधुरवाणीको बुलाकर रामचरित बनानेके लिए कहा और साथही अपने स्वप्नकी भी बात उन्होंने कह सुनायी। मधुरवाणीने प्रसन्नतापूर्वक राजाकी आज्ञा स्वीकारकी। इसने रामचरित नामक काव्य बनाया। सुना जाताहै कि यह काव्य बड़ाही सुन्दर है। सुना जाता है कि बंगालके किसी पुस्तकालयमें वह मधुरवाणीका बनाया रामचरित नामक काव्य रखा हुआ है। वह काव्य कितने सर्गोंका था यह तो मालूम नहीं, पर बङ्गालके पुस्तकालयमें जो पुस्तक सुरक्षित रखी गयी है उसमें चौदह सर्ग हैं। ये १७ वीं सदीमें वर्तमान थीं। मधुरवाणी इनका नाम था, या कुछ दूसरा नाम था, यह ठीक ठीक नहीं बतलाया जा सकता। सम्भव है इनका नाम कुछ दूसरा रहाहो। इनकी आवाज सुरीली और मधुर होनेके कारण इनका नाम मधुरवाणी हो गया हो, असली नाम कुछ और रहाहो। पर इसका निश्चय करना इस समय कठिन है। यह सन्देह इस कारण उठ रहा है कि मधुरवाणी नाम एक अस्वाभाविक सा मालूम पड़ता है।

इसके अतिरिक्त इनके विषयमें और कुछ मालूम नहीं, इनके पितृकुल तक का ज्ञानभी हमलोगोंको इस समय नहीं हो सकता है। ये विवाहिता थीं या अविवाहिता थीं, यदि विवाहिता थीं तो किस कुलमें इनका विवाह हुआ था, इन बातोंके जाननेका कोई उपाय नहीं, यह हमारी उपेक्षाका फल है।

(२)

इनके अतिरिक्त कितनी ही स्त्रियां कवि हुई हैं जिनकी कविता संग्रहग्रन्थों तथा अलङ्कार के ग्रन्थों में पायी जाती है।

मारुला (३)

ये स्त्री कवि हुई हैं। इनके बनाये श्लोक वल्लभदेवकी सुभाषितावली में पाये जाते हैं। श्लोक मनोहर हैं, सरस हैं और भावपूर्ण हैं। हालसाहब ने वासवदत्ता की भूमिकामें लिखा है कि मारुला नाम नहीं, किन्तु इनका नाम मारुता है।

मोरिका (४)

ये भी संस्कृत कवि थीं, इनके बनाये श्लोक सुभाषितावली और शार्ङ्गधर पद्धति में पाये जाते हैं।

विकटनितम्बा (५)

ये संस्कृतकी कवि हैं, इनका आसन महाकवियों के समान है। महाकवि राजशेखरने इनके लिए लिखा है।

के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रंजिताः।
निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्धमधुरं वचः॥

कौन ऐसा है जो विकटनितम्बाकी मधुरवाणी सुन कर अपनी स्त्रीकी भोली और सुन्दर वाणी की निन्दा न करे? यह सर्टिफिकेट राजशेखरने विकटनितम्बाको दिया है। इससे इनके कवित्वका स्पष्ट परिचय मिल जाता है। जो कवि एक महाकविके द्वारा प्रशंसित हो रहा है, उसकी प्रशंसनीयतामें किसीको सन्देह न

करना चाहिए । इनके बनाये श्लोक सुभाषित ग्रन्थों में पाये जाते हैं ।

विज्जका (६)

ये संस्कृत साहित्यमें बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखी जाती हैं। ये सरस्वतीका अवतार समझी जाती हैं । इनका एक श्लोक बड़े मजे का है । महाकवि दण्डिने सरस्वती का वर्णन करते हुए सरस्वतीको 'सर्वशुक्ला'' कहा है । विज्जका इसी सर्वशुक्ला पर एतराज करती हैं, वे कहती हैं—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
मुधैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

दण्डी इस बातको नहीं जानते थे कि विज्जका नीलकमल के समान श्यामवर्णकी है, इसी लिए उन्होंने सरस्वतीको "सर्वशुक्ला" कहनेकी गलतीकी है । विज्जका तो श्यामवर्ण की है, और यह स्वयं सरस्वती है, फिर सरस्वती सर्वशुक्ला कैसे ? सरस्वती का कोई रूप शुक्ल हो सकता है, सब रूप तो नहीं, क्योंकि विज्जका तो श्याम है । ये विज्जा भी कही जाती हैं। विज्जका के दो तीन श्लोक मैं यहां उद्धृत करना चाहता हूं, जिनसे हमारे पाठकवर्ग को इनके काव्यकी मधुरता, वर्णनकी उत्तमता मालूम होगी ।

केनात्र अम्पकतरो बत रोपितोऽसि
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभा
वोऽस्मि ॥

हे चम्पकवृक्ष, तुमको किसने यहां बुरे गांव के मूर्ख मनुष्य की वाटिकाके पास रोपा है ? यह अच्छा नहीं हुआ ! इस बाग में जब नये साग उगेंगे तब उनके बढ़नेके लिए, उनकी रक्षाके लिए, बाढ़ (घेरा) लगायी जायगी, उस बाढ़को जब कोई गौ आदि तोड़ देगा तब तुम्हारे पत्ते तोड़कर वह बाढ़ दुरुस्त की जायगी। यह अन्योक्ति है। कोई कवि किसी अरसिक स्वामीके यहां था। उसी को चम्पक वृक्ष बना कर विज्जकाने उपदेश दिये हैं। हे कवे, आप यहां क्यों आये ? आपका यहां आना अच्छा नहीं हुआ ! जिसके यहां आप हैं वह मूर्ख है वह आपकी कदर क्या जानेगा ? एक और सुनिए --

माद्यद्दिग्गज दानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिता
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टं भाग्यविपर्ययेन सरसः कल्पान्तरस्थायिन-
स्तस्याप्येकबकप्रचारकलुषं कालेन जातं जलम् ॥

मतवाले दिग्गजोंके मदलिप्त कपोल स्थलके धोनेसे क्षुभित जिस नदी की निर्मल तरङ्गें निर्बाध होकर आकाश में विचरती थीं, दुःख है ! आज भाग्यके दोषसे उसी कल्पान्ततक स्थित रहनेवाली नदी का जल एक बगलेके चलनेसे गदला होजाता है। यहभी अन्योक्ति है। इस में किसी धनपात्र मनुष्य को धनिक और दरिद्र दोनों अवस्थाओं का वर्णन है। कितना सुन्दर वर्णन है इसका अनुभव कीजिए और विज्जकाकी एक और कविता सुनलीजिए—

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।

लसन्ति कलहुंकृति प्रसभ कम्पितोरःस्थल-
त्रुटङ्गमक संकुलाः कलम कण्डनीगीतयः ।

धानकूटने वालियोंका गान बड़ाही मनोहर मालूम होता है ! बड़ी श्रद्धाके साथ मूसल हाथमें लिये हुई हैं, मूसल के उठाने तथा गिरानेके कारण चूड़ियां बज रही हैं, उन चूड़ियोंके शब्दसे यह गान और भी मनोहर हो गया है। जब वे मूसल गिराती हैं उस समय उनके मुंहसे हुङ्कार निकलता है और हृदय कम्पित हो जाता है, वही गानका गमक बन रहा है। कितना स्वाभाविक वर्णन है !

शिला भट्टारिका (७)

ये एक राजकन्या थीं। इनका नाम शिला था, पर राजकन्या होनेके कारण भट्टारिका कही जाने लगीं। इस कारण इनका नाम शिला भट्टारिका पड़ा। ये भोजराजके समय में वर्तमान थीं। भोजराज व इनकी उक्ति प्रत्युक्तिके कई श्लोक प्रसिद्ध हैं। इनके बनाये श्लोक काव्यप्रकाश आदि अलङ्कार ग्रन्थोंमें उदाहरण दिये गये हैं। सुभाषित ग्रन्थों में भी इनके श्लोक कम नहीं हैं।

महाकवि राजशेखरने इनकी प्रशंसामें भी एक श्लोक कहा है—

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरुच्यते ।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ।

शब्द और अर्थ दोनोंके समान समावेशको पाञ्चाली रीति कहते हैं, और पाञ्चाली रीति महाकवि बाणभट्ट तथा शिलाभट्टारिका की उक्ति में यदि पायी जाय तो है

इनके अतिरिक्त और भी अनेक स्त्रियां भारतवर्ष में हो गयी हैं, जिन्होंने ग्रन्थ निर्माण तथा कवित्व में अपनी अनुपम शक्ति का परिचय दिया है। ढूंढ़नेसे अनेक स्त्रियां मिल सकती हैं जिन की कविता किसी भी पुरुष की कवितासे न्यून गुण की नहीं ठहर सकती; पर ढूंढ़े कौन ? फुरसत किसे ?

धीरता और शिक्षकता

आज आदर्श बुजदिल का उदाहरण देना होता है तो भारतीय स्त्रियों की ओर इशारा करते हैं। यह बात बिलकुल झूठी नहीं है, सचमुच आज भारतीय स्त्रियों ने अपने अन्य सुन्दर गुणों के साथ अपनी धीरता भी खो दी है। धीरता क्या है? वह स्त्रियों के लिए एक उत्तम गुण है। यह बात इस समयकी भारतीय स्त्रियां भूल गयी हैं, साधारणसी साधारण बात के लिए भी ये घबड़ा जाती हैं, अपना कर्तव्य भूल जाती हैं। विपत्ति के समय में ये स्वयं तो व्याकुल होही जाती हैं, साथही अपने घरवालों को भी व्याकुल कर देती हैं; ये प्राण देनेकेलिए तैयार हो जाती हैं, ऐसी दशा में घरवाले भी व्याकुल होकर अपना कर्तव्य भूल जाते हैं। ये अपनी शक्ति विपत्तियों के दूर करने की ओर नहीं लगा सकते। धीरता न रहने के कारण स्त्रियां विपत्ति के समय एक दूसरी विपत्ति हो कर खड़ी हो जाती हैं।

पर यह बात कुछही दिनों से भारतीय स्त्रियों में उत्पन्न हुई है। कुछही दिन पहले भारतीय स्त्रियों में इतनी धीरता होती थी, कि वे विपत्ति के समय अपना कर्त्तव्य बड़ी खूबीके साथ पालती थीं। विपत्तिके समय उनकी धीरता देखकर बड़े बड़े धीर भी उनसे धीरता का पाठ पढ़ते थे। चाहे जितनी विपत्तियां आवें,

वे धीर बनी रहती थीं और अपने कर्तव्य का पालन करती थीं। विपत्तियों से घिरी रहकर भी उनलोगों ने अपने पुत्रों को शिक्षा दी है, उनका पालन किया है, उन्हें इस योग्य बनाया है जिसे सुन कर आश्चर्य करना पड़ता है। विपत्तियों का पहाड़ सामने है, बड़ी धीरता से उनका सामना करती हुई स्त्रियां आगे बढ़ रही हैं और अपने कर्तव्य का पालन कर रही हैं। भारी से भारी विपत्ति को उनलोगों ने अपनी धीरतासे, अपने उत्तम और योग्य कर्तव्य पालन से दूर किया है, बड़ी बड़ी कठिनाइयों को हल किया है, अपना महत्व प्रकाशित किया है, सुनिए, मैं उदाहरण देता हूं।

(१)

छत्रपति शिवाजी भारतीय इतिहास के एक दीप्यमान सूर्य हैं। इन्होंने भारतमें एक नयी जातिकी सृष्टिकी, एक नया हिन्दू राज्य स्थापित किया, भारतीय धर्मकी रक्षाकी, भारतीय सभ्यताको बचाया, छिन्न भिन्न हुई भारतीय शक्तिको सङ्गठित किया। पर किसके बल पर? इस प्रश्नका उत्तर स्वयं शिवाजीने एक दिन दिया था। उन्होंने कहा था कि मेरी सब सफलताओंका मूल मेरी माताकी शिक्षा है। सचमुच बात ऐसीही है। छत्रपति शिवाजीकी सफलताका कारण उनकी माता जीजाबाईकी धीरता और उनकी शिक्षा शैलीही है, यह बात जीजाबाईके चरित्र पढ़नेसे स्पष्ट मालूम हो जायगी।

जिन दिनोंकी बात मैं लिख रहा हूं उन दिनों दक्षिण भारतमें मुसलमानोंका राज्य था, और वह पांच भागोंमें बंटा हुआ था। बेदर, बरार, बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा ये उनराज्योंके

नाम थे। ये मुसलमान राज्य पहले शक्तिशाली थे; पर कई भागोंमें बंट जाने पर इनकी शक्तिभी कई भागोंमें बंट गयी, और वे बल हीन हो गये। उस समय मुसलमान अधिपतियोंने मराठा सरदारोंको अपने पक्षमें करने और उनकी सहायता लेनेकी बुद्धिमत्ता की।

मराठा सरदार लुकजी जादव राव मराठा सरदारोंमें बड़े प्रसिद्ध थे। ये सिन्द खेड़के देशमुख थे। अहमदनगर और बीजापुरके मुसल्मानी राज्योंसे इनका सम्बन्ध था। अहमदनगरके निजामकी ओरसे इन्हें बारह हज़ार घुड़सवारोंकी मनसबदारी मिली थी और इनाममें कई गांव मिले थे। ये जादव रावही जीजाबाईके पिता थे।

उनदिनों चित्तोरके महाराना वंशका भी एक कुटुम्ब दक्षिणमें रहता था। महाराना अजयसिंहके पुत्र सुजनसिंहने अपने पराक्रमसे नर्मदाके दक्षिण तट पर एक राज्य स्थापित किया था। बहुतदिनों तक यह राज्य बना रहा, पर मुसल्मानोंका अत्याचार अधिक बढ़ गया, घरमें द्वेष बढ़ गया, आक्रमण पर आक्रमण होने लगे, तब यह राज्य छिन्न भिन्न हो गया। उस समय के महाराना देवराज अपना राज्य छोड़ कर कृष्णा नदी के तीर पर चले गये, और वहीं वे खेती करने लगे, उन्होंने अपना नाम भी भोसावना रख लिया। इस प्रकार उन्होंने विपत्तिके दिन काटे। उनके वंशज बाबाजी भोसला अपने पराक्रमसे दो तीन गांवोंके अधिपति हो गये, और वहांके राजा कहाने लगे। बाबाजीके दो पुत्र हुए, जिनका नाम मालोजी और विठोजी था। इनकी बाल्यावस्थामें ही बाबाजी का देहान्त हो गया। ये दोनों भाई माता के द्वारा पालित हुए। माताने अपने पुत्रोंको बातोंकी शिक्षा दी, उन्हें अनेक

कुल गौरवकी बातें बतलायी। मालोजीका ब्याह सेनापति निंबाल-करकी कन्या से हुआ। ये दोनों भाई वीर और होनहार थेही, माताकी आज्ञा ले कर जादव जीरावके यहां नौकरीके लिए चले गये। जादव राव इनकी योग्यता से बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने इन दोनोंको पांच पांच गिन्नी मासिक पर फौजमें स्थान दिया। इनके कार्योंसे जादव राव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने निज़ामके यहां इन दोनोंके लिए सिफारिश की। निज़ामने मालोजीको सिपह-सालार और विठोजीको किलेदारका पद दिया। विठोजीके आठ पुत्र हुए पर वे सबके सब अल्पायु हुए। मालोजीके दो पुत्र हुए, एकका नाम शाहजी और दूसरे का नाम शरीफजी हुआ। शाहजी सुन्दर, चञ्चल और बुद्धिमान् था, इसलिए लोग उस पर विशेष प्रेम रखते थे। जादवजी भी उस पर स्नेह रखते थे।

मालोजी और जादव रावके कुटुम्ब पासही पास रहते थे, इनमें स्वाभाविक प्रेम हो गया था। उस प्रेमको जीजाबाई और शाहजीने और अधिक बढ़ाया। उस समय जीजाबाईकी अवस्था तीन वर्षकी थी, और शाहजीकी अवस्था पांचवर्षकी। ये दोनों साथही साथ खेलते थे। इनका प्रेमपूर्वक साथ साथ खेलना इनके माता पिताओंके लिए एक आनन्ददायक दृश्य था। ये भी साथ रह कर बहुत प्रसन्न होते थे, कभी जीजा शाहजीके यहां, और कभी शाहजी जीजाके यहां जा कर खेलते थे।

होली का त्योहार था, जादवरावके यहां महफिल थी। सभी श्रेणियोंके लोग एकत्रित थे। अपने पिता मालोजीके साथ शाहजी भी वहां गया था शाहजी को जादवरावने पुकारा, वह आकर

जादवरावकी गोदमें बैठ गया। जीजा भी पिताके पास पहुंच गयी। लोगोंने जीजा और शाहजी को साथ बैठे देखा, सभीने इस जोड़ीकी प्रशंसाकी। बहुतोंने इस जोड़ीकी चिरस्थायिताकी कामनाकी, जादवरावभी इसी जोड़ीको देखरहे थे। उन्होंने जीजासे पूछा, बेटी ! क्या तुम इस वरको पसन्द करती हो ? जीजाने कुछ उत्तर नहीं दिया। हां, गुलाल लेकर शाहजी पर उसने फेंक दिया, शाहजीने भी गुलालसेही इसका उत्तर दिया, सभी हंसने लगे, बहुतोंने कहा कि भगवान् इस जोड़ीको कायम रखे। कइयोंको तो इस संबन्धके निश्चित होजाने का भी निश्चय हो गया। मालोजी भी इस दृश्य को देखरहे थे, उन्होंने कहा, बड़े आदमी अपनी बातोंको सत्य कर दिखाते हैं, जीजा आजसे हमारी पुत्रवधू हुई।

जादवजी रावको यह बात न मालूम क्यों बुरी लगी, शायद उन्हें अपनी इज्जत का ध्यान आगया हो, शायद उन्हें अपना धन स्मरण हो गया हो। शायद उन्होंने सोचा हो, मेरी लड़की क्या एक सिपाहीके लड़केसे ब्याही जायगी ? पर उन्होंने कुछ कहा नहीं, मनही मन कुछ सोचकर रह गये।

एक बार जादवजीके यहां भोज था, सबलोगोंके यहां निमन्त्रण भेजा गया, मालोजीके यहां भी निमन्त्रण गया। मालोजीने निमंत्रणके उत्तरमें कहवा भेजा कि हम आपके समधी हो चुके हैं, हमारा आपके यहां विवाहके पहले भोजन करना ठीक नहीं, अतएव इस अपराधको क्षमा करें। यह बात जादवजीकी स्त्री को भी मालूम हुई। वे इस बातसे बहुत अप्रसन्न हुईं। उन्होंने मालोजी को इस विचारके त्याग देनेकी बात समझायी, ऊंच

नीच बतलवाया, पर इनकी समझ में कोई बात न आयी। ये कहते थे, जो बात तय हो चुकी, उसके बारेमें विचार करना व्यर्थ है। क्या जादवराव अपनी बात पलट देना चाहते हैं ? यह उनके लिए उचित नहीं, और मैं उन्हें ऐसा कभी करने न दूंगा। जादवजी मालोजीके हठसे चिढ़ गये और उन्होंने उन दोनों भाइयों की नौकरी छुड़वादी।

इस घटना से मालोजी और विठोजीके हृदय पर बड़ा आघात हुआ। उन्होंने समझा कि मेरी दरिद्रता के कारण लोग मुझसे घृणा करते हैं; मेरे कुल, मेरी मर्यादा, कोई वस्तु नहीं, केवल धन न होने के कारण मैं नीच दृष्टि से देखा जाता हूं। इन बातों को सोचकर उन्होंने अपनी सम्पत्ति बढ़ाने की ओर ध्यान दिया। वे दोनों भाई परिश्रम करने लगे, उनलोगों ने अपने गांवों का उत्तम प्रबन्ध किया, आमदनी बढ़ी, "पानी में पानी आता है" कहावत के अनुसार उन्हीं दिनों उनलोगोंको गयाहुआ धन मिलगया, अब उन लोगोंने तीनहज़ार सैनिक रखलिये, दान धर्म करने लगे। थोड़ेही दिनों में मालोजी और विठोजी की प्रसिद्धि हो गयी. इनका यश चारों ओर फैलगया, लोगों को जादवराव की बातें भी मालूम हुईं। जादवरावकी निन्दा होने लगी, जनता मालोजीके पक्षमें हुई. इन्होंने अच्छा अवसर देखकर अपना काम करना प्रारम्भ कर दिया। इन्होंने अपनी सेनाके साथ प्रयाण किया, और दौलताबादके पासकी किसी मसजिदमें दो सूअर काटकर फेंक दिये, साथही एक चिट्ठी भी रख दी। चिट्ठी में इनलोगों ने अपना नाम लिखकर लिखा था कि जादवराव ने हमलोगों के साथ अन्याय

किया है, उन्होंने अपनी कन्या का व्याह मेरे पुत्र के साथ करना स्वीकार किया था, इसबात के अनेक साक्षी हैं, पर अब वे नाहीं कर रहे हैं। उन्होंने बिना अपराध हमलोगों की नौकरी छुड़ा दी है। हमलोग इसका न्याय चाहते हैं, यदि निज़ाम सरकार उसका न्याय न करेंगे तो हमलोग इसी प्रकारके उपद्रव करते जायंगे।

यह ख़बर निज़ाम के कानों तक पहुंचायी गयी, निज़ाम ने मालोजी का ही पक्ष लेना उचित समझा। इसके कई कारण थे, एक तो सचमुच मालोजीके साथ अन्याय किया था, दूसरे मालोजी की बढ़तीहुई शक्तिका भी निज़ामको ज्ञान था। वह जानता था कि मालोजी की प्रतिष्ठा देश में बढ़ रही है, अतएव इनसे विरोध करने का फल अच्छा न होगा, और सोभी एक व्यर्थकी बातके लिए। उसने जादवरावको बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि मालोजीके लड़के से तुमने अपनी कन्या को व्याहने की इच्छा की थी, और अब उससे मुकरते हो। एक हिन्दूके लिए क्या यह लज्जाकी बात नहीं है? तुमको अपने पदका ध्यान रखना चाहिए, झूठ बोलना इस पदकी योग्यताके लिए अनुचित है। जादवरावने उत्तर दिया—सरकारकी आज्ञा न माननेकी शक्ति मुझमें नहीं है, सरकार जो आज्ञा देंगे वही मैं करूंगा; पर एक निवेदन करना चाहता हूं और वह यह है कि क्या एक सरदारकी लड़कीका व्याह किसी सिपाहीके लड़केसे करा देना सरकार उचित समझते हैं? जादवराव की बातसे निज़ाम बहुत विस्मित नहीं हुआ। निज़ामने कहा, मालोजी सिपाही होने पर भी राजवंशका है। यह ठीक है कि आज उसके पास धन नहीं है पर धनसे कुलका

महत्व अधिक है। उसका कुल तुम्हारे कुलसे श्रेष्ठ है। तुम आज धनी हो, और तुम्हारा धनी रहना मेरी प्रसन्नता पर निर्भर है, यदि मैं तुम्हारा धन छीन लूं तो तुम भी गरीब हो जा सकते हो। यह झिझक किसी कामकी नहीं। यह सम्बन्ध उत्तम है, तुम्हें स्वीकार करना चाहिए।

निज़ामने मालोजीको बुलाकर राजाकी उपाधि दी, शिवनेरी चाकणके किले और पूना तथा सूपा परगनेकी जागीर दी। अब जादवरावकी भी आपत्ति मिट गयी, शुभमुहूर्तमें मालोजीके पुत्र शाहजीका ब्याह जीजाबाईसे हो गया। इस ब्याहमें बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग निमन्त्रित किये गये थे। स्वयं निज़ाम भी आये थे।

मालोजीका आदर निज़ामने किया और मालोजीने भी उसका बदला स्वामिभक्ति, वीरता आदि अपने सद्गुणोंसे दिया। मालोजीके स्वर्गवास होने पर उनका पद उनके पुत्र शाहजीको मिला। शाहजीने भी अपने गुणोंका परिचय दिया; इन्होंने अपनी वीरता, अपने चातुर्य, राजनीतिके चातुर्यसे निज़ामकी अच्छी सेवा की।

मोगलोंके द्वारा चांदबीबीका खून हुआ, निज़ाम क़ैद किये गये। मलिकअम्बरने फिरसे निज़ाम राज्य स्थापनके लिए प्रयत्न किया। शाहजी इसके साथ थे। जहांगीरने अपनी बड़ी सेना भेजी, पर मराठे सरदारोंकी रणचातुरीसे उसे सफलता नहीं मिली। तब उसने मराठे सरदारोंको अपने पक्षमें मिलानेका प्रयत्न किया। शाहजीको बहुत लोभ दिया गया, पर वे अटल रहे। शाहजीकी ओरसे हताश हो कर मुगलोंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। वे अप-

उद्योगमें लगे रहे और सफल भी हुए। जादवराव पर मुगलोंका फंदा काम कर गया, वह लोभमें फंस कर मुगलोंसे जा मिला। इस कारण मलिकम्बरको मुगलोंसे सुलह कर लेनी पड़ी।

मलिकम्बरकी मृत्युके पश्चात् दूसरा निज़ाम हुआ। शाहजीकी प्रमाणिकता और नीतिमत्ता प्रसिद्ध हो चुकी थी। नये निज़ामकी ओरसे ये सब काम करने लगे। दिल्लीका बादशाह नहीं चाहता था कि निज़ामको शाहजीकी सहायता मिले। इस लिए उसने जादवरावको शाहजी पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। उस समय शाहजी और निज़ाम माहुलीके किलेमें भी थे। वहां उन्होंने छःमहीने तक जादवरावका सामना किया। अन्तमें कुछ सोच कर अपनी स्त्री और पुत्रको साथ ले कर वहांसे निकल पड़े, जादव राव ने पीछा किया पर वह इन्हें पकड़ न सका।

उस समय शाहजीकी स्त्री जीजाबाई गर्भवती थीं, दिन भर घोड़ेकी सवारी करनेसे उनके पेटमें दर्द होने लगा। शाहजी चिन्तित हुए। उसी समय उन्होंने जीजाबाईको किसी सुरक्षित स्थानमें रख देनेका विचार किया। जुन्नरमें श्रीनिवास राव नामक एक अपने मित्र सरदारके यहां उन्होंने जीजाबाईको रख दिया और वे स्वयं आगे बढ़े। जादवरावको यह खबर मिली कि शाहजी जुन्नरके किलेमें हैं। वह जुन्नर पहुंचा, पर वहां शाहजी न मिले, जीजाबाईको उसने देखा, देखतेही उसके हृदयमें एक नये भावका उदय हुआ, वह भाव मनुष्यत्वका था। उस समय उसे अपने कुकर्म स्पष्ट दीख पड़े, उसने जीजासे कहा, बेटी ! मेरे अपराधको क्षमा करो ! मेरी बुद्धि मारीगयी थी ! मैं विवेकभ्रष्ट होगया

था ! यदि तुम मेरे यहां चलना चाहो तो चलो, मेरा घर पवित्र होगा ! जीजाने उत्तर दिया—मैं अपने पतिकी आज्ञाके बिना यहांसे कहीं नहीं जा सकती। जादव राव वहांसे लौट गया, उसने मुगलों का साथ छोड़ दिया। निज़ामके आश्रयमें रहनेकी उसने प्रार्थनाकी, निज़ाम उसकी विश्वासघातकतासे बहुत अप्रसन्न था, उसने जादव रावकी प्रार्थना बड़े आदर और प्रेमसे स्वीकार की। दौलताबादके किलेमें निज़ामने उसको मिलनेके लिए बुलाया, और गुप्तघातकों द्वारा उसे मरवा डाला। निज़ामने इसी लिए उसकी प्रार्थना स्वीकार की थी।

जादवरावका अन्त हुआ पर शाहजी की आपत्तियोंका अन्त नहीं हुआ। इस घटनाके दसवर्षके बाद तक शाहजी को भागछिप कर युद्ध भर समय बिताना पड़ा। इसी समय जीजाबाई को पुत्र हुआ। यही पुत्र विख्यात शिवाजी नामसे भारतके इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। जीजाबाई भी निश्चिन्त हो कर एक जगह नहीं रह सकी, उसे भी चारों तरफ मारी मारी फिरना पड़ा था। इस किले से उस किले में शरण लेती हुई उसने भी अपने कठिन समय व्यतीत किये। पर इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी उसने अपने पुत्र की शिक्षा में असावधानी नहीं की। वह सभी कष्टों की उपेक्षा कर पुत्र को शिक्षा दिया करती थी, लिखने पढ़नेके साथ तीर चलाना, निशाना मारना, घोड़े पर चढ़ना आदि की शिक्षा वह अपनी देख-रेख में दिया करती थी।

शाहजीने एकबार पुनः निज़ामी स्थापन करने के लिए प्रयत्न किया पर लोग चरित्रहीन हो गये थे लोलुप हो गये थे, स्वामी

पीना मिलजानाही उनके जीवन का उद्देश्य हो चुका था, इस लिए शाहजी को अपने प्रयत्न में सफलता नहीं मिली; तथापि वे हताश नहीं हुए। उन्होंने निज़ाम कुलके एक बालकको गद्दी पर बैठाया और शत्रुओं को मार भगाया। शाहजहांने जब यह ख़बर सुनी तब उसने शाहजी पर चढ़ाई करदी; बीजापुरवालोंने शाहजहां का पक्ष लिया। अब सिवाय सुलह करलेनेके शिवाजीके लिए कोई गति नहीं थी, उन्होंने शाहजहां से सुलह करली। शाहजहांने शाहजी को बीजापुरवालों के यहां रहने की आज्ञा दी, और पूना तथा सूपा परगनेकी उनकी जागीर कायम रखी। शाहजीने स्त्री, पुत्र को पूना में रखा और स्वयं बीजापुर रहने लगे। अपने परिवार की रक्षाके लिए तथा छोटे पुत्र की शिक्षाके लिए दादोजी कोंडदेव नामक एक पण्डित को मुकर्रर किया।

जीजाबाई अब निश्चिन्त हुईं। दादोजी उन्हें एक बड़े योग्य मनुष्य मिल गये थे, उनकी सहायता और सम्मतिसे जीजाबाई अपने पुत्रको शिक्षा देने लगीं। राजनीति, धर्मनीति, क्षात्रधर्म व्यवहार, कूटनीति आदि की शिक्षा वे देने लगीं। जीजाबाईने कष्टोंसे जो अनुभव पाया था वह भी अपने पुत्र को बतलाया। उन्होंने मनुष्य जीवन का जो आदर्श निश्चित किया था उसका भी उपदेश दिया। वे अपने पुत्रसे बराबर कहती रहतीं कि मानव जीवनका उद्देश्य है देशके दुःखों को दूर करना, अपने धर्म की रक्षा करना। इन्हीं बातों पर मानवजीवन की सफलता निर्भर है। शिवाजी अपनी माता और दादोजी कोंडदेवके उपयुक्त शिष्य थे; उन्होंने अपने गुरुओं की शिक्षाके अनुसार अपना जीवन गठित

किया। उन्होंने अपने आदर्श को कार्य में परिणत किया, यह बात भारतीय इतिहास पढ़नेवाले सभी जानते हैं।

शाहजीने कार्नाटक की लड़ाई जीतनेके बाद अपनी स्त्री और पुत्र को बीजापुर बुला लिया। शिवाजी की शिक्षा समाप्त हो चुकी थी, राजकाजका कुछ कुछ अनुभव भी इन्होंने कर लिया था। पिताके साथ रहने पर अपनी योग्यता बढ़ाने का इन्हें अच्छा अवसर मिला। राजनीतिके गहरे दांवपेंच भी इन्होंने जान लिये, बादशाहके दरबारका भी रङ्गढंग इन्होंने देख लिया। एक दिन शिवाजीने अपने पितासे अपना अभिप्राय कह सुनाया। पिताने कहा—तुम्हारे विचार उत्तम हैं, पर यह समय ठीक नहीं। पिता की बातें शिवाजीको रुचीं नहीं, पर इन्होंने कुछ प्रतिवाद नहीं किया।

ये दरबार में अपने पिताके साथ जाया करते थे; पर ये न तो बादशाह को सलाम करते थे न और दरबारियों के समान बादशाह का अदब मानते थे। ये बातें बादशाह को खटकती थीं, उसने शाहजीसे ये बातें कहीं भी। शाहजीने शिवाजीको पूना भेज देनाही इसका उत्तम उपाय समझा और उन्होंने वैसा किया भी।

शिवाजीके पूना पहुंचनेके थोड़ेही दिनों बाद दादोजी कोंडदेवका स्वर्गवास हो गया। शिवाजीके बड़े भाई सामाजी कर्णाटक की लड़ाई में मारे गये, इससे शिवाजी को बड़ा कष्ट हुआ, पर वे हताश नहीं हुए और न अपने कर्तव्यसे ही विचलित हुए। शिवाजी की माता को भी कष्ट हुआ पर वे भी अपने उद्देश्यसे

विचलित नहीं हुईं। उन्होंने अपने पुत्र को विपत्तिके समयके कर्तव्य का उपदेश दिया। शिवाजीने धैर्यधारण किया और अपनी जागीरका काम वे स्वयं देखने लगे, और साथही अपने उद्देश्य की सिद्धिके लिए भी प्रयत्न करने लगे। बीजापुरके बादशाह को भी शिवाजीके कामों की खबर लगी, उसने शाहजीसे कहा, देखो तुम्हारे लड़केकी शोखी बढ़तीजाती है, उसे इन हरकतोंसे रोको, नहीं तो इस काबुरा फल तुमको भोगना पड़ेगा। दरबार जितना क्षमा करना जानता है उतनाही कड़ा दण्ड देना भी जानता है। आजसे तुम क़ैद किये जाते हो, तुम्हारी मुक्ति या प्राणदण्ड तुम्हारे पुत्रकी कार्यशैली पर निर्भर है।

शाहजी ने शिवाजी को पत्र लिखा, उसमें उन्होंने सब बातें लिखीं, अपनी दशा भी लिखी, पर शिवाजी पर उस पत्र का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने पिताके पत्रका उत्तर दिया—अब मैं काम प्रारम्भ कर चुका, कैसे छोड़ूं? आप चिन्ता न करें। भगवान् सब कल्याण करेंगे! शिवाजीने अपने प्रयत्न से पिताको मुक्त कर लिया।

शाहजी वृद्धहो चुके थे, युद्धचिन्ता, राज्यकार्य आदि से जर्जर हो गये थे। अवस्था भी होही चुकी थी, उनका स्वर्गवास हुआ। शिवाजीके सामने अन्धकार हो गया, जीजाबाई सती होने के लिए उद्यत हुईं, पर शिवाजी ने अपनी दशा उनको बतलायी। शिवाजी ने कहा—तुम्हारे साथ शिवा भी अग्नि में कूद कर प्राण दे देगा। जीजाबाई ने बड़े कष्टों से अपना विचार बदल दिया।

शिवाजी ने अपना कार्य अब खुल्लमखुल्ला प्रारम्भ कर दिया। शिवाजी को अच्छे अच्छे सहायक मिलते गये। शिवाजी अपने कार्य

में सफल होने लगे। सोलहसौ चौहत्तर ईस्वी में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ, जीजाबाई ने अपनी आंखों से अपनी शिक्षा को कार्य रूप में देखा।

हिन्दूराज्य की स्थापना हुई, हिन्दूधर्म की रक्षा हुई, हिन्दू-सभ्यता का विलयोन्मुख प्रवाह पुनः वेग से प्रवाहित हुआ, जीजाबाई को सन्तोष हुआ। संसार में मातृकीर्त्ति का यश फैला, मातृ-शिक्षा का महत्त्व लोगों ने समझा।

इन घटनाओं पर विचार करनेवाले सज्जन इस बात को अवश्य ही स्वीकार करेंगे, शिवाजी की योग्यता मातृशिक्षा से ही उत्पन्न हुई थी, शिवा जी ने वीरता, स्वदेशाभिमान, स्वधर्माभिमान, आदर्श की उच्चता, जीवन की पवित्रता आदि माता के द्वारा ही पाये थे।

उत्तम शिक्षिका, अनुपम धीरा, अतुल कर्तव्य दक्षा जीजाबाई पुत्र के अड़तालीसवें वर्ष तक जीवित रहीं, और अन्त तक उन्हों ने अपने पुत्र के कार्यों में सहायता दी। ये एक भारतीय स्त्री के जीवन की घटनाएं हैं, उपन्यास नहीं है और न कवि की कल्पना ही है।

(२)

धीरता और शिक्षणशैलीके विषयमें भारतीय स्त्रियोंकी योग्यता थी कि नहीं, और थी तो कितनी इसका एक उदाहरण मैं देचुका हूं। कुलपति महाराज शिवाजी की माताके जीवनविषयक कुछ घटनाओंका उल्लेख मैंने किया है, उन घटनाओं पर सावधानीसे विचार करनेवाले इस बातको अवश्य मान लेंगे कि शिवाजी की योग्यताओंका विकाश उनकी माताकीही शिक्षासे हुआ था।

यह घटना अभीकी है, अब मैं प्राचीन एक दो स्त्रियोंकी जीवन-घटनाओंका उल्लेख करना चाहता हूं, जिससे इस बातका पता लगेगा कि भारतीय स्त्रियोंकी शिक्षाविषयक योग्यता प्राचीन है; यह अभी उत्पन्न नहीं हुई है।

महाराज स्वायम्भुव बहुत प्राचीन समयमें थे, ये प्रजापतियोंमें से थे। इनकी स्त्रीका नाम शतरूपा था। इस स्त्री पुरुषमें बड़ा प्रेम था, ये दोनों आत्मउन्नतिके लिये स्वाधीन विचार किया करते थे। इनकी तीन सन्तान थी। दो पुत्र और एक कन्या। प्रियव्रत और उत्तानपाद, पुत्रोंके नामथे, कन्या का नाम देवहूति था।

देवहूतिका लालन पालन बड़े अच्छे ढंगसे हुआ था, विज्ञान विज्ञान तथा सामयिक व्यवहारोंका ज्ञान इनको बहुत अच्छा हो गया था। देवहूति एक अच्छी पण्डिता हो गयी, इसका समय विद्याओंके अध्ययन तथा ज्ञानचर्चामें ही अधिक बीतता था। माता पिता कन्याकी विद्यामें रुचि देख बहुत प्रसन्न होते थे। देवहूति की अवस्था अब ब्याह योग्य हुई। यद्यपि यह राजकन्या थी, तथापि राजकुलमें ब्याह करना इसे पसन्द नहीं था। राजकुलकी बुराइयां इसे मालूम थीं, क्योंकि यह राजकन्या थी, राजकुलमें ही इसका पालन पोषण हुआ था, इस लिये बहुत दिनों तक इसका ब्याह नहीं हुआ।

मातापिता चिन्तित थे। एक दिन कर्दम नामके एक ऋषि राजाकी राजधानीमें पहुंचे। ये बड़े विद्वान् थे। विद्याध्ययन समाप्त कर गृहस्थाश्रम ग्रहणकी जिज्ञासासे ये नगरमें आये थे

राजासे इन्होंने अपने आनेका उद्देश्य बता दिया। यह सुन राजा प्रसन्न हुए। उन्होंने महारानी शतरूपा की सम्मति इस बात में पूछी। शतरूपा राजा का प्रस्ताव सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। देवहूतिका ब्याह कर्दमऋषि से करदिया गया। राजकुल की पली हुई देवहूति वनवासी पति को पाकर बहुत प्रसन्न हुई, उसने अपने विद्याभ्यास में अधिक सुविधा देखकर अपने को धन्य माना, अपने भाग्य को सराहा। ये नवीन दम्पति वन में आये।

यहां उनका विद्याध्ययन बड़े अच्छे ढंग से होने लगा। स्त्री पण्डिता पति पण्डित, सांसारिक झंझटों का नाम नहीं, फिर विद्याध्ययन के होने में बाधा क्या? इस दम्पति का समय बड़े सुख से व्यतीत होने लगा। देवहूति का शास्त्राध्ययन एक प्रकार से पूरा हो चुका था, अब वह पति के साथ शास्त्रचिन्तन करने लगी। शास्त्रीयसिद्धान्तों को लौकिक व्यवहारों-पर घटाने लगी, लौकिकतत्त्व, सुख दुःख, आत्मतत्त्व आदि का विचार करने लगी। अपनी शङ्काओं का निर्णय पति से शास्त्रार्थ करके करने लगी। इसप्रकार इस दम्पति का दिन बड़े सुख से व्यतीत होने लगा।

देतहूति के गर्भ से नौ कन्याएं हुईं और एक पुत्र। देवहूति की नौ कन्याओं में से एक अरुन्धती और दूसरी अनसूया थी। अरुन्धती और अनसूया ये दोनों भारतीय स्त्रीसमाज में अपने गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं। अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ से ब्याही गयी थी, ये पतिव्रताओं में सबसे श्रेष्ठ और सौभाग्यशालिनी समझी जाती हैं। अनसूया का ब्याह महर्षि अत्रि से हुआ था। अनसूया भी अपनी

बहिन अरुन्धती से किसी बात में कम नहीं हुई। पातिव्रत्य, विद्वत्ता, ज्ञान आदि के लिए इसकी भी बड़ी प्रसिद्धि है।

देवहूति के पुत्र का नाम कपिल मुनि था। कपिल के उत्पन्न होने के थोड़ेही दिनों के बाद महर्षि कर्दम वानप्रस्थ ग्रहण करने के लिए घर छोड़कर चले गये थे। पुत्र की शिक्षा का भार उन्होंने अपनी स्त्री देवहूति को सौंपा। देवहूति ने योग्य वय होने पर पुत्र को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। ज्ञान, विज्ञान की शिक्षा उन्हों ने अपने पुत्र को दी।

प्रकृतिके अनुसार जो शिक्षा दी जाती है वह फलवती होती है। बालककी जैसी प्रकृति हो, जिस विषयकी ओर उसकी स्वाभाविक अभिरुचि हो, उसी विषयकी शिक्षा यदि उसे दी जाय, तो शिक्षा देनेवालेका परिश्रम सफल होता है। देवहूति इस शिक्षा विज्ञानको जानती थी, इस कारण उसने पुत्रकी प्रकृतिका निश्चय किया। उसने अपने पुत्रकी प्रकृतिको बड़े ध्यानसे देखा, उसको मालूम हुआकि इस पुत्रको यदि दार्शनिक शिक्षा दी जाय तो बड़ा लाभ होगा। देवहूतिने वैसाही किया। इसे दर्शन शास्त्रोंका पूरा ज्ञान था। इसने अपने पतिसे शास्त्रार्थ करके जो दार्शनिक सिद्धान्त निश्चित किये थे, उनका उपदेश अपने पुत्रको दिया। माता-पिताओंके गुण पुत्रमें प्रकाशित हुए। कपिलदेव बड़े भारी दार्शनिक हुए, सबसे पहले कपिलमुनिका ही दर्शनशास्त्र भारतमें प्रसिद्ध हुआ। उनके बनाये दर्शन शास्त्रका नाम सांख्य दर्शन है।

इस दर्शनशास्त्रमें उत्तम पुरुषार्थका वर्णन किया गया है। तीन प्रकारके दुःखोंका दूर करनाही उत्तम पुरुषार्थ कहा जाता है। आधि

अधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार के दुःख होते हैं, इन दुःखोंका दूर करना अत्यन्त पुरुषार्थ कहा जाता है। इसी अत्यन्त पुरुषार्थका वर्णन इस अत्यन्त पुरुषार्थको पाने के उपायोंका निरूपण किया गया है।

देवहूतिने जिन सिद्धान्तोंका निश्चय किया था, उसने जो दार्शनिक तत्त्व निश्चित किये थे, कपिलदेवने उन सिद्धान्तों, उन निश्चयोंको संसारके कल्याणके लिए प्रकाशित किया।

भारतीय दर्शन शास्त्रोंकी संख्या बारह है, उनमें छः आस्तिक दर्शन हैं और छः नास्तिक। आस्तिक दर्शनोंमें कपिलका दर्शन बड़े आदर की दृष्टिसे देखा जाता है। कपिल एक भारतीय आचार्य समझे जाते हैं।

कपिलकी इस महत्ता का कारण क्या है इस बात पर विचार करना आवश्यक है। कपिलकी शिक्षा, दीक्षा कहां हुई थी, इस बात को सदा ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है। इन बातोंके ध्यानमें रखनेसे जो विचार उत्पन्न हों उन्हीं विचारोंके अनुसार भारतीय स्त्रियोंकी शिक्षाकी पद्धति निश्चित होनी चाहिए, यही कल्याणका मार्ग है। भारतीय स्त्रियोंकी शक्तियां व्यर्थकी ऊटपटांग बातोंमें खर्च करना बुद्धिमानीकी बात नहीं है।

(३)

मदालसा स्वयं विदुषी थी, और अच्छी शिक्षिका थी। इसने अपने तीन पुत्रों को वैराग्यका उपदेश दिया था और एक को राजनीतिका। इस की शिक्षाके प्रभावसे तीन पुत्र तो संसारत्यागी बन गये और एक पुत्र राजधर्म पालनेवाला राजा बना।

मदालसा गन्धर्वकन्या थी। इसका ब्याह राजा ऋतुध्वजके साथ हुआ था। महर्षि गालवके आश्रम में दैत्योंका बड़ा उपद्रव था। उस उपद्रवसे महर्षि व्याकुल हो गये थे; उनके धर्मानुष्ठान में बड़ा विघ्न होता था। इसलिए महर्षि, राजा शत्रुजित् के पास आये और उन्होंने अपने विघ्नों को दूर करने की प्रार्थना की। राजा शत्रुजित्ने अपने पुत्र ऋतुध्वज को महर्षिके साथ भेजा। महर्षि ऋतुध्वज को साथ लेकर अपने आश्रम में गये।

एक दिन महर्षि ध्यान में बैठे थे। वहां एक दैत्य शूकर का रूप धरकर आया। महर्षिने राजा को बतलाया—यही दैत्य है। राजा उसकी ओर चले, वह भागा। राजाने भी उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया, वह शूकर रूपी दैत्य एक बिल में घुस गया, राजा भी उसके पीछे २ बिल में घुस गये। दैत्य का पता न लगा, वह बिल में जाकर कहीं छिपरहा, राजा उसी बिल में अपना घोड़ा बढ़ाते गये। बड़ी दूर आगे जाने पर उन्हें एक अच्छासा मकान दीख पड़ा। राजा उस मकान में गये, वहां एक युवती स्त्री बैठी थी, उसके आसपास दो तीन और स्त्रियां बैठी थीं। राजाको देखतेही वह स्त्री मूर्च्छित हो कर गिर पड़ी, पास रहनेवाली स्त्रियोंने उसकी मूर्च्छा दूरकी. राजाने उन स्त्रियोंसे पूछा—यह स्त्री कौन है? आपलोग यहां कैसे आयीं? उनमें की एक स्त्रीने कहा, गन्धर्वराज विश्वावसुको आप जानते होंगे, वेही हमारी सखीके पिता हैं, हमारी सखीका नाम मदालसा है। एक दिन मदालसा अपनी सखियोंके साथ बागमें घूम रही थी, वहां एक दैत्य पहुंचा और वह माया रच कर हमारी

सखीको हर लाया, वह हमारी सखीसे ब्याह करना चाहता है। उसने हमारी सखीको कैद कर रक्खा है।

उस स्त्रीने अपनी सखीका हाल बता कर राजाका परिचय पूछा, और यहां आनेका कारण पूछा। राजाने अपनी सब बातें बतला दीं। राजा का परिचय पाकर वे बहुत प्रसन्न हुईं। उनलोगोंने राजासे कहा, महाराज ! आपको भाग्यनेही यहां भेजा है, आप इस गन्धर्वराज पुत्रीसे ब्याह करें, यह आप पर अनुरक्त है। आप इसका दैत्यके हाथोंसे उद्धार करें। अपने क्षत्रियके पवित्र कर्तव्यका पालन करें, और लक्ष्मी रूपिणी स्त्रीको पारितोषिक रूपमें ग्रहण करें। राजा ऋतुध्वज इस प्रस्ताव पर सहमत हुए, इन्होंने मदालसाका पाणिग्रहण किया। वे मदालसाको ले कर वहांसे चले। उन्हें उस गुफाके द्वार पर एक दैत्य मिला, उसने राजा पर आक्रमण किया। राजाने भी बड़ी वीरतासे उसका सामना किया। घमसान युद्ध हुआ। राजाके पराक्रमसे दैत्य घबड़ा गया और अन्तमें वह मारा गया। राजा ऋतुध्वज अपनी राजधानीमें मदालसाको लेकर लौट आये। महारानीको देख कर नगरवासी बड़े प्रसन्न हुए। वृद्ध महाराज शत्रुजित्‌को प्रसन्नताका ठिकाना न रहा, राजधानीमें आनन्द मङ्गल होने लगा।

ऋतुध्वज और मदालसा धर्मपूर्वक गृहस्थ धर्मका पालन करने लगे। दान, दरिद्रोंका पालन, मूर्खोंको शिक्षा दान, अत्याचार पीड़ितों की रक्षा आदि इनके जीवनका प्रधान कर्तव्य हुआ। राजा शत्रुजित्‌ने अपनी वृद्धावस्थाके कारण राज्यके प्रबन्ध का भार अपने पुत्रको सौंप दिया।

मदालसाके चार पुत्र हुए। उनके नाम विक्रान्तसुबाहु, शत्रुमर्दन और अलर्क था। मदालसा अपने पुत्रोंको स्वयं शिक्षा दिया करती थी, उनके पालन पोषणका भार मदालसाने अपनेही ऊपर ले रखा था। एक दिन मदालसाका बड़ा पुत्र विक्रान्त रोता हुआ अपनी माताके पास आया। रोनेका कारण पूछने पर उसने मातासे कहा, मा, मुझे कई लड़कोंने मिल कर मारा है, उनका साहस तो देखो कि उन्होंने स्वयं दीन, दरिद्र हो कर एक राजपुत्रको मारा है। इतने बड़े राजपुत्र पर हाथ उठानेका दण्ड उन्हें अवश्य मिलना चाहिए। मा, तुम इसका प्रबन्ध स्वयं करो। तुमको वैसा प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे उनलोगोंको एक राजपुत्रके मारनेका क्या फल होता है यह बात मालूम हो जाय। माताने पुत्रकी बातें सुनीं और उन्होंने जो उत्तर दिया वह सुनने लायक है। एक महारानी कहती है अपने पुत्रसे, और वह उस अवस्थामें जब कि वह साधारण बालकों द्वारा मारखाकर आया है। महारानीको क्रोध नहीं आया, महारानीने अपने पुत्रके मारनेवालेका घर जलानेकी आज्ञा न दी, उन्होंने अपने पुत्रके मारनेवालेको फांसी पर चढ़ादेनेकी आज्ञा न दी। वे जो आज्ञा देतीं, उसका पालन होना कठिन नही था। राजाके छोटेमोटे नोकर जैसा चाहते हैं वैसा कर बैठते हैं। जिसको चाहते हैं उसको फांसी पर लटका देते हैं, फिर स्वयं महारानीकी आज्ञा कौन रोक सकता है? पर महारानीने वैसी आज्ञा नहीं दी। क्यों? महारानी सच्ची महारानी थीं, उन्हें अपने उत्तरदायित्वका ज्ञान था। उसने अपने पुत्रसे कहा, बेटा, तुमको कौन मार सकता है? तुम विशुद्ध आत्मस्वरूप हो आत्माको मारनेकी शक्ति किसीमें

भी नहीं है। जो तुम हो वही वे लड़के हैं। तुम राजपुत्र हो, और वे दीन बालक हैं। यह एक भ्रमात्मक ज्ञान है, यह मिथ्या अभिमान है। मिथ्याज्ञानके वशवर्ती होना तुम्हारे लिए उचित नहीं। तुम कहते हो—मुझे मारा है, पर यह बात ठीक नहीं। शरीर तुम नहीं हो, उन लोगोंने मारा होगा तो शरीरको मारा होगा। शरीर तो अचेतन है, उसके मारे जाने पर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुम रोते क्यों हो? तुमको तो चोट नहीं आयी। दूसरेकी चोटको अपनी समझ कर दुःख करना क्या बुद्धिमानों को उचित है?

माताके उपदेशोंसे पुत्रका क्रोध शान्त होगया। इसी प्रकारके उपदेशोंसे माता अपने पुत्रोंके हृदयमें ज्ञानकी ज्योति जगाती रहती थी। उसके उपदेशोंका प्रभाव पुत्रों पर खूब पड़ता था। इसका फल यह हुआ कि मदालसाके तीन पुत्र संसारत्यागी बन गये। इस बातसे राजा ऋतुध्वजको बड़ा दुःख हुआ, उन्होंने महारानी मदालसासे कहा, तुमने वेदान्त के उपदेश देकर हमारे तीन पुत्रोंको तो वनवासी बना दिया। हमारी अवस्था भी अब ढल चुकी है, अब तुम्हें अपने छोटे लड़के को राज्यकार्यकी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे राज्यकार्य सम्भल सके। मदालसाने पतिको प्रणाम कर उनकी आज्ञा स्वीकार की। छोटेपुत्र अलर्कको उसने राजनीति, धर्मनीति आदिकी शिक्षादी, और वह अपनी माताकी शिक्षामें पूरा उतरा।

* * *

प्रबन्धशक्ति और रणचातुर्य

भारत में सम्मिलित परिवार की प्रथा बहुत दिनों से चली आती है। आज भलेही इस विलासिता के समय में इन महंगी के दिनों में सम्मिलित परिवार की प्रथा ठीक मालूम न पड़े, इसमें अनेक दोष दिखायी पड़ें। पर प्राचीन समय में, और आज भी इस प्रथा से अनेक लाभ होते थे और होते हैं। परिवार का एक छोटा-मोटा राज्य होता था और परिवार के मनुष्य उस परिवार राज्य के संचालक अधिकारी। परिवार के मनुष्य स्वयं राजा भी थे और प्रजा भी, वे स्वयं नियम बनाते थे और उन नियमों का स्वयं पालन भी करते थे। नियम बनाने के समय वे राजा होते थे, और नियमों के पालने के समय में प्रजा। परिवार का कोई अनुभवी वृद्ध प्रधान होता था और वही सर्वसम्मत नियमों का पालन कराता था।

स्त्रियां परिवार की भीतरी बातों का प्रबन्ध करती थीं, वे वहां की पूर्ण अधिकारिणी होती थीं, इससे उनको भी अपने कार्यों का पूरा पूरा ज्ञान हो जाता था। इस सम्मिलित परिवार प्रथा से स्त्रियों को प्रधानतः दो बातों का ज्ञान होता था। एक तो प्रकृति सम्मिश्रण और दूसरा प्रबन्ध।

एक परिवार में कई स्त्रियां होती थीं, कई पुरुष होते थे, उनकी शिक्षा दीक्षा भी थोड़ी बहुत भिन्न होती थी उनकी मानसिक

वृत्तियां भी समान नहीं होती थीं, प्रकृति में भी बहुत अन्तर होता था, पर सबको साथ रहना होगा इसलिए वे अपनी प्रकृति को खूब सहनशील बना लेती थीं, अपनी उग्रता अथवा हठ आदि दूर कर देती थीं, अपनी प्रकृति को उदार बना देती थीं, अपने मानसिक भावों को विशाल बना देती थीं। सम्मिलित पारिवारिक प्रथा से स्त्रियों को प्रबन्ध की शिक्षा मिलती थी, क्योंकि परिवार का समस्त प्रबन्ध उन्हींके जिम्मे रहता था, परिवार के मनुष्यों के भरण-पोषणका प्रबन्ध उन्हींको करना पड़ता था, इससे उनको प्रबन्धक-शक्ति उत्तेजित हो जाती थी, उनका प्रबन्ध संबन्धी ज्ञान बढ़ जाता था, प्रबन्ध की कठिनाइयां मालूम हो जाती थीं, धीरता, दृढ़ता आदि स्वाभाविक गुण जागरित हो जाते थे; जिसका फल यह होता था कि अवसर आनेपर वे स्त्रियांही, बड़े बड़े राज्यों का प्रबन्ध स्वयं कर सकती थीं बड़ी बड़ी बाधाओंका सामना कर सकती थीं, बड़े बड़े नीतिज्ञों के मनोरथ असफल कर सकती थीं, बड़ी बड़ी खूंखार सेनापतियों की सेनाओं को निराश और हतोत्साह कर देती थीं। प्रबन्ध में अपनी दक्षता दिखानेवाली कतिपय भारतीय स्त्रियों का चरित्र सुनिए, सीखने की इच्छा हो कुछ सीखिए, नहीं तो कमसे कम सुन तो अवश्य लीजिए। और कुछ नहीं तो कानहीं पवित्र होंगे।

(१)

रानी कुंवर साहब का नाम पंजाब प्रान्त में बड़े गौरव और आदरसे लिया जाता है। ये बड़ीही गुणवती, दक्ष और कोमल-हृदया थीं। इनका जन्म पंजाबके पटियाला राजकुल में हुआ था।

ये पटियाला की राजकुमारी थीं, इनका ब्याह सरदार जयमलसिंह से हुआ था। ये अपने पतिके साथ उनकी जागीर पर रहती थीं, और पतिको राजकार्य चलाने में परामर्श तथा उचित सहायता देती थीं। इनका अपनी प्रजाओं में बड़ा मान था, प्रजा इन्हें बड़े आदर की दृष्टिसे देखती थी और इन में पूज्यभाव रखती थी।

इधर पटियालाके महाराजके शरीरान्त होने पर नये राजा गद्दी पर बैठे। नये राजा का नाम साहब सिंह था। साहब सिंह बुरे लोगों की संगति में पड़ गया था। वह बड़े बड़े व्यसनों में फंस गया था। ऐसी दशा में वह राजकार्य कैसे सम्भाल सकता था। राजकार्य में अव्यवस्था फैलने लगी। प्रजामें असन्तोष बढ़ने लगा। राजा को इसबात की खबर लगी। वह उपाय सोचने लगा। राजव्यवस्था सम्भालने का उसने बहुत प्रयत्न किया। पर वह अपनी प्रकृति से लाचार था। उसके किये कुछ न हो सका। अन्तमें उसे एक बात सूझी, उसने पत्र लिख कर अपनी बहिन को बुलाया। वह अपनी बहिन की योग्यता जानता था। बहिनके आने पर उसने कहा, यह तुम्हारे पिता का पालित राज्य है, इस राज्य का पालन तुम्हारा अयोग्य भाई नहीं कर सकता। तुम अपने पिताके राज्य का पालन करो, अपने भाई के कलङ्कों को मिटाओ। बहिनने भाई की प्रार्थनायें स्वीकार कीं और तब से वे रानी कुंवर साहब वहीं रहने लगीं, तथा भाईके राज्यका प्रबन्ध करने लगीं। रानीके सुप्रबन्धसे असन्तुष्ट प्रजा सन्तुष्ट हुई। राज्य प्रबन्ध की सभी गड़बड़ी दूर हुई। पटियाला की प्रजा रानीको पूज्य देवी समझने लगी

सूर्य जहांसे हटता है वहां अन्धकार हो जाता है, रानी अपनी जागीर छोड़ कर पटियाला चली आईं इससे उनकी जागीरमें गड़बड़ी मच गयी। रानीके पतिका चचेरा भाई फतहसिंह था, वह रानीके पति जयमलसिंहसे शत्रुता रखता। जबतक रानी वहां थीं, तबतक उसकी एक न चली, रानीके वहांसे हटतेही उसकी बन आयी, उसने रानीके पति पर चढ़ाई करदी और उन्हें उसने कैद कर लिया। इसबातकी खबर जब रानीको लगी तो वे पटियालाकी सेना लेकर फतहसिंह पर चढ़गईं, फतहसिंह रानीके शरणमें आया, और रानीके पति जयमलसिंह की मुक्ति हुई। रानी पुनः पटियाला लौट आयीं।

उनदिनों भारतमें मराठों का उपद्रव बहुत बढ़ा था। मराठोंने चारोंओर लूट पाट मचा रखी थी। ये पंजाब तक पहुंच गये थे, और कई सिख सरदारोंको अपना करद बना लिया था। मराठोंकी सेना पटियालाराज्यके समीप पहुंच गयी। मराठोंने राजासे कहवाया कि कर दो, नहीं तो हमसे युद्ध करो। रानी कुंवर साहब के हाथ उस समय पटियाला राज्यका प्रबन्ध था। उन्होंने मराठोंसे कहवाया—कर नहीं दिया जा सकता, हां युद्धके लिए राज्य तैयार है। शीघ्रही रानीने अपने मित्र राज्योंसे सेना एकत्रित करली, और उस सेनाकी सेनापति बन कर स्वयं रणक्षेत्रमें गयीं। युद्ध आरम्भ हुआ, मराठोंकी सेना बहुत थी, और सिखसेना थोड़ी। सिखसेना हारती गयी, इस बातको देख कर रानी चिन्तामें पड़ गयीं, उन्होंने अपना कर्तव्य निश्चित किया। एक दिन अपनी समूची सेना लेकर रातको उन्होंने मराठोंकी सेना पर आक्रमण

कर दिया। मराठे विजयोन्मादसे उन्मत्त थे, उन्हें कुछ ज्ञान नहीं था, इस आकस्मिक धावेसे वे घबड़ा गये और उन्होंने पटियाला राज्यसे सन्धि करली।

रानी इस युद्धसे सकुशल लौट आयीं, उसी समय नाहन नामके राज्यसे उन्हें निमन्त्रण मिला। नाहनकी प्रजाने विद्रोह खड़ा कर दिया था और उस विद्रोह का दबाना राजाकी शक्तिसे बाहर था। ऐसी दशा में नाहनके राजाने रानी कुंवर साहबसे सहायता मांगी। रानी अपनी सेना लेकर वहां पहुंचीं, और वहांका विद्रोह उन्होंने शान्त किया। विद्रोह मिट जाने परभी रानी कुंवर साहब बहुत दिनों तक नाहनमें रहीं, और वहां रह कर उन्होंने राज्यका सुप्रबन्ध किया। वहांसे चलने पर राजा और प्रजाने उन्हें बहुतसी भेंट दी, और उन लोगोंने मिलकर कृतज्ञतापूर्वक उन्हें बिदा किया।

नाहनसे आकर पुनः पटियाला राज्य की वे देखरेख करने लगीं। इस वर्ष कुछ दिन बीते। पर रानी का शान्तिपूर्वक बैठना नहीं बदा था। मि० टामसन नामक एक अंग्रेज ने थोड़ी सेना की सहायतासे हिसार और हंसी परगनों को अपने अधीन कर लिया था। उस का हौसला बढ़ा हुआ था, उसने सिख राज्यों को अपने अधिकार में करने की इच्छासे जीन्दराज्य पर आक्रमण किया। रानी कुंअर साहब अपनी सेना लेकर जीन्द की सहायता के लिए चल खड़ी हुईं। सिख सरदारों का बल बढ़ गया। रानीके आने की खबर पातेही वह वहांसे भाग खड़ा हुआ। वहां से मेहम पहुंचा; वहां भी सिखोंने उसका सामना किया। वह वहांसे भी भागा। सिखसेना विजय की खुशी मनाने लगी सभी गाफिल थे

रात्रि का समय था. उसी समय मि० रायसनने आक्रमण किया, चतुर महारानी की सेना सजग थी. उसने मि० रायसन की सेना का सामना किया। रायसन रानीसे डरता था, इस कारण उसने सिखोंसे सुलह करली। इस लड़ाई में उस की बड़ी हानि हो चुकी थी, युद्धसे और भी हानि होने की सम्भावना थी।

रानी का जीवन एक प्रकारसे युद्धजीवन हो गया था, वे घबड़ा गयीं, उन्होंने थोड़े दिनों तक विश्राम करने की इच्छा प्रकट की, समय भी उनकी इस इच्छाके अनुकूल था। पटियाला राज्य का प्रबन्ध बहुत उत्तम हो गया था, पंजाब प्रान्त में भी शान्ति थी, अतएव शास्त्र, पुराण सुनने लगीं, राजकाज की देखभाल करना उन्होंने बिलकुल छोड़ दिया।

रानीके प्रबन्धसे प्रजा प्रसन्न अवश्य थी, पर वे कुटिल, जो राजाओं की मूर्खतासे लाभ उठाया करते हैं, मूर्ख, असावधान राजाओं पर मनमाना अत्याचार किया करते हैं, वे भला रानीसे कैसे प्रसन्न रह सकते थे? रानीके समय में उन्हें अवसर नहीं मिलता था कि वे अपना कुचक्र चलावें। जब रानी विश्राम करने लगीं उस समय उनलोगों ने अयोग्य राजाको समझाया कि रानी आप को मारकर स्वयं पटियाला की मालिक बनना चाहती है। पटियाला का राजा अविचारी और मूर्ख तो थाही, उसके मनमें यह बात बैठ गयी। राजा रानी कुंअरसाहब का अपमान करने लगा, उनकी बातों में दखल देने लगा। रानी को ये बातें बहुत बुरी लगीं और वे अपनी जागीर पर चली गयीं, राजा ने उनको वहां से भी हट जाने का हुक्म दिया। रानी ने उत्तर दिया कि मैं यहां से नहीं

हटती, जो चाहो सो कर लो, वह लड़ाई करने की तयारी करने लगा। एकदिन अपनी सेना लेकर वह नीच कृतघ्नरानी अपनी बहिन पर आक्रमण करने के लिए चला। उस के मन्त्रियों ने समझाया कि आप को युद्ध का कुछ अनुभव नहीं है, रानी चतुर और दक्ष हैं उनका बड़ा प्रभाव है, उनसे युद्ध कर आप कभी जीत नहीं सकते। रानी से हारने पर आप की बड़ी बेइज्ज़ती होगी, राजा को समझ में यह बात भी आगयी।

रानी के जीवन की एक घटना और है, और वह घटना एक पुरुष हृदय की नीचता तथा कृतघ्नता का परिचायक है, वह है एक अयोग्य हृदय की क्रूरता का उदाहरण; सुनिए।

राजा रानी के यहां गया और उसने कहा, बहिन, मैं आप से युद्ध करने नहीं आया था। क्या मैं इतना कृतघ्न हूं कि आपके उपकारों को भूल जाऊंगा? मैं अपने अपराधों की क्षमा मांगने आया हूं, मैं पुनः आपको पटियाला ले चलने के लिए आया हूं। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें और पटियाला चलें। सरल हृदयरानी ने उस दुष्ट की बातों का विश्वास करलिया, वे पटियाला चली गयीं, राजा ने उन्हें कैद कर दिया। यह है उपकारों का बदला, इसप्रकार का बदला शायद राक्षस ही दिया करते होंगे, पर रानी थीं चतुर, वे दासी का वस्त्र पहन कर वहां से भाग आयीं, और अपने पति के पास चली गयीं, तब से अन्त तक उन्होंने अपने पति के साथ रह कर भी वन में बिताया। अपने नीच और कृतघ्न भाई का मुंह न देखने की प्रतिज्ञा कर ली थी, और उस प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने आजन्म किया।

(२)

महाराष्ट्र प्रान्तमें बल्लारी नामका एक छोटा राज्य है। छत्रपति शिवाजीके समयमें वहांका एक राजा अपना काम योग्यतापूर्वक कर रहा था। राज्यका प्रबन्ध, सेनाका सङ्गठन और खजानाका प्रबन्ध उस राज्यका उत्तम था। राजाकी आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर वहांके शासनका भार रानी पर आ पड़ा। रानीका नाम मलयबाई देशाई था। रानीने अपनी उत्तम योग्यताका परिचय दिया राज्यका उत्तम प्रबन्ध किया। सेनाका भी अच्छा सङ्गठन किया। इसी समय रानीको एक बहुत बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ा, पर उस समय रानीने आत्मगौरवका परिचय दिया।

छत्रपति महाराज शिवाजीकी धाक उस समय समस्त भारतमें फैली हुई थी, दिल्लीका बादशाह तक शिवाजीके नामसे चौंक पड़ता था। वेही शिवाजी बल्लारीके किले पर चढ़ गये। छत्रपति शिवाजी ने एक स्त्रीके ऊपर चढ़ाई करना कैसे उचित समझा इस प्रश्नका उत्तर कोई इतिहासवेत्ताही दे सकता है। पर घटना सच है। शिवाजी अपनी सेना लेकर बल्लारी दुर्ग पर चढ़ गये। पर वहां शायद इन लोगोंने जैसा सोचा होगा वैसी स्थिति न मिली। बल्लारी का शासनभार एक स्त्रीके हाथ है, भला वह क्या हमारा सामना कर सकती है, सम्भवतः शिवाजी और उनके सैनिकोंका यही विश्वास रहा होगा। पर रानी क्षत्राणी थी, वह स्वाधीनताका मूल्य समझती थी, वह अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए युद्ध करने पर उतारू हुई। दोनों ओरके वीर लड़ने लगे। एक ओरके सेनापति शिवाजी थे और दूसरी ओरकी सेनापति मलयबाई थी।

युद्ध हुआ, २७ दिन तक मलयबाईने शिवाजी की सेनाका सामना किया, पर राज्य छोटा था, शक्ति छोटी थी, युद्ध कब तक चल सकता था। किलेका एक हिस्सा टूट गया, मलयबाई उसको मरम्मत नहीं करा सकी, किले पर शिवाजीका अधिकार होगया, रानी मलयबाई कैद हो गयी। पर शिवाजीने मलयबाईकी वीरता का, स्वाधीनताप्रेमका आदर किया, शिवाजी उनको पूज्यभावसे देखने लगे। उन्होंने बड़े आदरसे मलयबाई को अपने दरबार में बुलाया और प्रतिष्ठापूर्वक आसन देकर बिठाया। मलयबाईने कहा—छत्रपति महाराज, कई अवसर आते हैं कि मनुष्यों को अपने बड़े माननीय के सामने भी तलवार उठानी पड़ती है। महाराज, आपसे युद्ध करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। आपकी शक्ति अगाध है, और आपके सामने मेरी शक्ति कुछ भी नहीं है। आपका सामना करने का जो फल होगा वह मुझे मालूम था। पर एक क्षत्रिय बालक या कन्याके लिए स्वाधीनता बड़ी अमूल्य वस्तु है, उसे मैं योंही नहीं खो सकती, उस की रक्षाके लिए जीजानसे प्रयत्न करना मेरा धर्म है, मैं आपसे अनुग्रह की प्रार्थना नहीं करूंगी, अब आप को अधिकार है, जो चाहें सो आप कर सकते हैं।

इनबातों को सुन कर शिवाजी गद्गद हो बोले—महारानी, आज आप की वीरता देख कर तथा पवित्र वाणी सुनकर मैं अपनी माता का स्मरण करता हूं। मैं जीजाबाई का पुत्र हूं और उन्होंने वीराङ्गनाके आदर करनेकी शिक्षा मुझे दी है। मेरे अपराध आप क्षमा करें। मेरे जीतेजी अब कोई भी आपके राज्य पर

सङ्कट नहीं आ सकता, आप निश्चिन्त रहें। आज आप मुझे अपना पुत्र समझें, पुत्रके अविनय के कारण आपको जो कष्ट भोगने पड़े हैं उन्हें भूल जायं, जब जो आज्ञा करनी हो मुझे निःसङ्कोच होकर किया करें।

रानी मलयबाई के आनन्दका ठिकाना न रहा, उन्हें शिवाजी के समान सहायक मिला। उन्होंने शिवाजी को आशीर्वाद दिये और अपने किलेमें चली गयीं। शिवाजी भी कुछ दिनों बल्लारी दुर्गमें ठहर कर अपनी राजधानी में लौट आये।

(३)

एक और उदाहरण मैं देना चाहता हूं। महारानी अहल्या बाईने राजकाजमें जो चतुरता दिखायी है, वह सचमुच गौरवकी बात है। बड़े बड़े खूंख़ार राजनीतिज्ञों के दांत ऐसे खट्टे किये हैं जिसे सुनकर अहल्याबाईके विषयमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। अहल्याबाईकी प्रबन्धशक्ति, उनकी रणचतुरता, भगवद्भक्ति और दान धर्म सभी एकसे एक अनुपम थे।

अहल्याबाई आनन्दराव सिन्धियाकी कन्या थीं। यद्यपि ये एक साधारण गृहस्थकी कन्या थीं, पर इनकी तेजस्विता और इनके गुणोंको देखकर इन्दौरके होलकर मल्हाररावने इनके पितासे कहा कि तुम अहल्याका ब्याह मेरे पुत्र खण्डेरावसे करदो। अहल्याके पिताने इस सम्बन्धको अपना अहो भाग्य समझा, दोनों का ब्याह हो गया। अहल्या पतिगृहमें गयीं; अहल्याके आचरणोंसे सास, ससुर, पति आदि बहुत प्रसन्न हुए। अहल्या पूजा, पाठ तथ अध्ययन प्रतिदिन किया करती थीं। सेवकोंसे बड़ा प्रेम रखती

थीं, इससे थोड़ेही दिनों में अहल्या सर्वप्रिय हो गयीं। एक साधारण गृहस्थ की कन्या होकर अहल्याने अपने पतिके राजपरिवार में जिस योग्यताका परिचय दिया, जिन गुणोंको प्रकट किया, वह सचमुच एक आनन्द की बात है। अहल्या सुखी हैं, अहल्या अपने समस्त परिवारकी प्रेम पात्र हैं, पर अहल्याका यह सुख बहुत दिनों तक चिरस्थायी नहीं रह सका। अहल्याके पति खण्डेरावका शरीरान्त हो गया, अहल्या विधवा हो गयीं। उस समय पतिकी मृत्युके पश्चात् विधवा स्त्रियां सती हो जाती थीं, अहल्याने भी सती होनेकी अपनी इच्छा प्रकट की, पर अहल्याके ससुर मल्हाररावने रोका। उन्होंने कहा, खण्डेराव चल बसा तुम भी चलना चाहती हो, क्या हमलोग इतने खण्ड उठा सकते हैं? अहल्याने अपने ससुर की आज्ञा मान ली और सती होनेकी अपनी इच्छा त्याग दी। अहल्याबाई के एक पुत्र और एक कन्या थी।

खंडेराव की मृत्यु के पश्चात् मल्हारराव ने अहल्या को युवराज बनाया। राज्य के कई विभागों के काम अहल्या को सौंपे गये। अहल्या भी उन कामों को बड़ी योग्यता से करने लगीं। मल्हारराव पेशवा के सरदार थे। जब ये पेशवा के साथ पानीपत के युद्धमें गये, तब राज्य का समस्त प्रबन्ध अहल्या के सिर आगया। अहल्या ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया। मल्हारराव जब युद्धसे लौट आये और उन्होंने जब अपनी पतोहूकी प्रबन्धशक्ति देखी तब वे बहुत आनन्दित हुए। अहल्याका और भी वे आदर करने लगे। पानीपतके युद्धसे लौटनेके कुछ दिनोंके बाद मल्हाररावका शरी

शान्त हुआ। अहल्या पर दुःखका वज्र गिरा। पर उनने अपने छोटे पुत्रकी ओर देखा और अपनेको सम्हाला। अहल्याने अपने पुत्र मालेरावको होलकर की गद्दी पर बैठाया, और वह आप राज्यप्रबन्ध करने लगीं। मालेराव बड़ाही अयोग्य, क्रूर, अविचारी और दुराचारी था; लोगोंको कष्ट देनेमें उसे बड़ा आनन्द आता था। मालेरावकी इस प्रकृतिसे प्रजा त्रस्त थी, अहल्या दुःखी थीं, पर कोई उपाय न था। कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हुआ। उसके सुधारनेका बड़ा प्रयत्न किया गया, पर सभी निष्फल हुए। अन्तमें लोग हताश हो गये, इधर मालेरावने किसी एक कारीगर को मरवा डाला, इस अपराधसे वह पागल हो गया। वह सदा उसी कारीगर को अपने सामने देखा करता था, और इसी पागलपने की अवस्थामेंही उसका अन्त हुआ। मालेरावकी मृत्युसे इन्दौर की प्रजा को दुःख नहीं हुआ।

उस समय पेशवाकी गद्दी पर माधवराव थे। माधवराव एक शान्त, शिष्ट तथा योग्य शासक थे, उनके चाचा रघुनाथराव ठीक माधवरावके विपरीत थे। रघुनाथराव नितान्त लोभी थे। इन्दौर का प्रधान मन्त्री गङ्गाधर यशवन्त नाम का एक व्यक्ति था। वह बड़ाही दुष्ट था। अहल्याबाई की कार्यदक्षताके कारण उसकी मनमानी नहीं चलती थी। अहल्याबाई प्रजाको अपने पुत्रके समान समझती थीं, फिर वे पुत्र समान अपनी प्रजापर अत्याचार क्यों होने दे सकती थीं? इस लिए गङ्गाधर यशवन्त की एक न चलती थी। वह प्रजा को चूस नहीं सकता था। यही इसके अप्रसन्न होने का कारण था गङ्गाधरने [illegible]व को इन्दौर राज्यपर चढ़ा

करने की सम्मति दी। रघुनाथरावने भी उस की बात मान ली। उसने इन्दौर राज्य पर चढ़ाई करने की तैयारी करना प्रारंभ कर दिया। पर माधवराव को इस की कुछ भी खबर न थी, ठीक समय पर अहल्या को भी यह बात मालूम हुई। उनने बरोदाके गायकवाड़ और नागपुरके भोसलासे सहायता मांगी। सहायताके लिए जो पत्र अहल्याने भेजा था, वह बड़ा प्रभावशाली था, उस पत्र को पढ़कर गायकवाड़ और भोसला अपनी अपनी सेना लेकर अहल्या की सहायताके लिए इन्दौर की ओर चल पड़े। अहल्याने अपनी सेना भी तैयार कर ली, अपने सरदारों को भी इनने उत्साहित किया। अहल्याने सब प्रबन्ध कर लिया सही, पर वह युद्ध करना नहीं चाहती थीं, वह नररक्त बहाना पसन्द नहीं करती थीं। उनने माधवराव को नीचे लिखे मर्म का एक पत्र भेजा —

महाराज, मैं आपके अधीन हूं। इन्दौर राज्यने आप की सेवा की है, और उसी सेवाके बदले हमारे पूर्वजों को आपके पूर्वजोंने यह राज्य दिया है। स्वामी और सेवक की लड़ाई कैसी? यह बात कहने और सुनने में भी बुरी मालूम होती है, पर दुःख है वही बुरी बात हो रही है। सुना गया है कि आप की सेना इन्दौर राज्य पर आक्रमण करने आती है, पर महाराज, मैं उस सेना को भर शक्ति इन्दौर राज्य पर आक्रमण करने न दूंगी। इस पवित्र होलकरके राजसिंहासन को कोई भी छू न सकेगा, जबतक मैं हूं या मेरी सेनामें एक भी सैनिक है। महाराज, आपसे हार जाने में मेरी कोई हानि नहीं, पर यदि कहीं भगवान् की इच्छा से आप की सेना हार गयी तो यह पेशवा के

लिए बड़ी लज्जाकी बात होगी ! इसलिये निवेदन है कि महाराज जोकुछ करें सो अवस्था सोच कर करें । यथा समय इस पत्रका उत्तर माधवरावके यहांसे आया । माधवरावने लिखा था—तुमने जैसा अपने राज्यका प्रबन्ध किया है, वह देख मैं बहुत प्रसन्न हूं । यह न केवल तुम्हारे लिए, किन्तु हमारे लिए और इस समस्त देशके लिए गौरवकी बात है कि तुमने स्त्री होकर राज्यप्रबन्धमें ऐसी सुन्दर योग्यता दिखायी । मैं तुम्हारा राज्य नहीं छीनना चाहता, मैं तुम्हारा और तुम्हारे राज्यका हितचिन्तक हूं । अपने राज्य पर आक्रमण करनेवाले को पूरा पूरा दण्ड देनेका तुम्हें अधिकार है । इस पत्रको पढ़ कर सभी बड़े प्रसन्न हुए । होलकर, भोसला और गायकवाड़की तीनों सेनाएं मिल कर सिप्रानदीके तीर पर खड़ी हुईं, रघुनाथरावकी सेना सामनेसे आई । रघुनाथरावने जब देखा कि अहल्याने युद्धकी पूरी तैयारी कर रखी है, तब वह घबड़ा गया । उसने अहल्याबाईसे कहवाया कि मैं तुमसे युद्ध करने नहीं आया हूं । मैं आया था तुम्हारे शिष्टाचारकेलिये, मल्हार राव की मृत्युके बादसे हमारे यहांसे कोई आया नहीं था । युद्धकी बात तो एक बनावटी थी, सोभी केवल तुम्हारी प्रबन्धशक्ति और दृढ़ताकी परीक्षाके लिए । अहल्याबाईने कहवाया, महाराज, आप बड़े हैं, स्वामी हैं, आपकी परीक्षामें स्त्रियां कैसे उत्तीर्ण हो सकतीं हैं ? आप हमारे यहां शिष्टाचारके लिये आये हैं । यह प्रसन्नताकी बात है, आइए, आतिथ्य ग्रहण कीजिए । रघुनाथराव करताही क्या ? उसने अपनी सेना उज्जयिनी भेजदी, और कुछ सरदारोंके साथ इन्दौर गया । कुछ दिनों इन्दौरमें रह कर वह अपने घ लौट गया अहल्याबाई बिना युद्धकेही विजयिनी हुई

एक नीतिवेता विद्वान्‌का कहना है कि कुल्हाड़ी चन्दनके पेड़को काटती है, और चन्दन उसे सुवासित करता है ! बात बहुत ठीक है। गङ्गाधर यशवन्तने अहल्याबाईको नष्ट करनेका प्रयत्न किया, पर अहल्याबाईने उसके कुकर्मोंकी ओर ध्यान नहीं दिया, उसने गङ्गाधररावको अपने राज्यमें स्थान दिया, तुकाजीरावको अहल्याने अपना सहयोगी बनाया। इन घटनाओंने अहल्याकी कीर्तिको बहुतही उज्ज्वल बना दिया, राजस्थानके कई राजाओंने अहल्यासे मैत्री स्थापितकी और मित्रतासूचक उपहार उनके पास भेजे।

अहल्याका समस्त समय राज्यप्रबन्धमेंही नहीं बीतता था, वह भगवद्भजन, पूजापाठ, दानधर्ममें भी अपना समय लगाया करती थीं। अहल्याबाई आजभी भारतवर्षमें अपने दानधर्मके लिए प्रसिद्ध हैं। भारतका ऐसा कोई प्रसिद्ध तीर्थ नहीं, जहां अहल्याबाईके खर्चसे चलनेवाला मन्दिर, पाठशाला तथा अन्नसत्र न हो। काशी आदि स्थानोंमें अहल्याकी धर्मकीर्ति आजभी वर्तमान है। अहल्याके सद्गुणोंसे समस्त प्रजा उन पर सन्तुष्ट थी। प्रजापर अत्याचारका नाम सुनतेही अहल्या व्याकुल होजाती थीं, और उस अत्याचारीको बिना उचित दण्ड दिये नहीं मानती थीं। अहल्याके विचार उच्च थे, उनके आचरण उच्च थे। उनने अपने जीवनमें ऐसा कोईभी काम नहीं किया, जिसकी ओर अंगुली उठायी जासके। अहल्या राजनीतिमें बड़ी अभिज्ञता रखती थीं, इसी कारण वह उस विप्लवके समय अपनी राज्यकी रक्षा कर सकीं, अपने राज्यमें शान्ति बनाये रह सकीं। उनको तङ्ग करनेके लिए, उनका धन लूट लेनेके लिये कोई बात उठा न रखी गयी पर उनकी

चतुरतासे किसीकी भी एक न चलने पायी। जयपुरका राज्य मल्हाररावके समयसे इन्दौर राज्यको कर देता था। इन्दौर राज्य का कई करोड़ रुपया जयपुर राज्य पर बाकी था। अहल्याबाई ने अपने रुपये मांगे। उस समय जयपुरनरेशने कहवाया कि सिन्धिया कहते हैं कि वह कर हमको मिलना चाहिए, क्योंकि होल्करसे हम बलवान् हैं। अहल्याने सन्देशा सुन लिया और वह युद्धकी तैयारी करने लगीं, इसी समय जीवाजीराव सेन्धियाने इन्दौरके मन्त्री तुकोजीराव को कैद कर लिया। अहल्याने अपनी सेना भेजी, युद्ध हुआ। इस युद्धमें सेन्धिया हार गये, तुकोजीरावका भी कैद से छुटकारा हुआ। अपने बली होनेका अभिमान सेन्धिया का चूर चूर हो गया। जयपुरनरेशने भी सब बातें समझलीं और उन्होंने करके बाकी रुपये अहल्याबाईके यहां भेज दिये।

संसार विचित्र है, संसारके मनुष्योंकी समझ अनोखी है। बलहीनके पास कोई चीज़ होती है तो बलवान् चाहते हैं कि यह चीज़ हमारे यहां चली आवे तो ठीक, यद्यपि बलवान्को उस चीज़की कोई ज़रूरत नहीं। पर दुर्बलके घर खानेको न हो, बलवान्के घर अन्न सड़ता हो तो दुर्बलको यह अधिकार नहीं है कि वह बलवान्से अन्न मांगे, अथवा उस अन्नमें से लेनेकी इच्छा प्रकट करे। अहल्याके पास रुपये थे, वह उन रुपयोंसे दान, धर्म किया करती थीं, मन्दिर बनवाया करती थीं, अन्नसत्र स्थापित किया करती थीं, घाट बंधवाया करती थीं। रघुनाथराव पेशवाने समझा कि यह धन अहल्याके पास क्यों है? यह तो हमारे पास होना चाहिए। रघुनाथरावपेशवाने यह विचार शायद इसलिए

किया हो कि अहल्या दुर्बल है, वह स्त्री है, मैं बलवान् हूं। पर अहल्या इन धमकियोंकी परवा नहीं करती थीं, अहल्याने रघुनाथरावको कहला भेजा कि मेरे यहां जो रुपये हैं वे दानधर्म केलिये हैं, आप भी ब्राह्मण हैं, मैं कुश द्वारा सङ्कल्प करके वे रुपये आपको दे सकती हूं, आपकी इच्छा हो, सङ्कल्प बोलने केलिये चले आइए। सङ्कल्प! पेशवा भी कहीं सङ्कल्प लेते हैं! इतना बलवान् मनुष्य एक स्त्री के सामने हाथ फैला सकता है! रघुनाथरावने अहल्याका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, वे सेना लेकर अहल्यासे युद्ध करके रुपये छीनने केलिए चल पड़े। अहल्याने अबकी स्त्री-सेना बनायी। रघुनाथरावकी सेनाके आने पर वह भी अपनी स्त्री-सेनाके साथ जाकर उपस्थित हुई। रघुनाथरावने पूछा, तुम्हारी सेना कहां है, अहल्याने उत्तर दिया—आपसे लड़नेके लिये सेनाकी कोई आवश्यकता नहीं है, ये स्त्रियां आपके सामने खड़ी हैं, इनका वध कीजिए और जितने चाहिए रुपये उठाकर ले जाइए! रघुनाथ इस बातको सुनकर लज्जित हुए। उन्हें विवश होकर लौटना पड़ा। इस प्रकार अहल्याका जीवन झंझटोंमें बीता, पर उनने अपनी प्रजाको झंझटोंमें फंसने न दिया। अहल्याने स्वयं कठिनाइयोंका सामना किया, पर उनने अपनी प्रजा तक कठिनाइयों को आने न दिया।

अहल्याका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। पति, पुत्रका वियोग अहल्याको पहलेही सहना पड़ा था, कन्या थी और उस का एक पुत्र। दौहित्र, जामाता और कन्याका भी वियोग अहल्या को सहना पड़ा।

अहल्या आज नहीं हैं, पर उनकी कीर्ति आजभी समग्र भारतमें विद्यमान है। अहल्याके पुण्यकार्य आज भी शरीर धारण कर अहल्याके स्मारक बने हुए हैं। काशीविश्वनाथका मन्दिर ही एक ऐसा स्मारक है कि हिन्दूजातिमें जब तक धर्मभाव रहेगा तब तक अहल्याबाई को कोई भुला नहीं सकता।

अहल्याबाई भारतकी उन रमणियोंमें से थीं जिनके कारण भारत गौरवशाली है, जिनके कारण भारतकी पवित्र कीर्त्ति उज्ज्वल है।

नीरव उपासना।

शब्दहीन ध्यानके लिए जितनी एकाग्रता की आवश्यकता है उतनी गाकर स्तुति करनेवालोंके लिए नहीं है। जो गाकर देवता की स्तुति करते हैं उनकी केवल वाणी ही काम में लगी रहती है। आंखसे वे दूसरी चीजें देख सकते हैं, हाथोंसे सिर खुजला सकते हैं, एक पैरसे दूसरे पैर की मक्खी हटा सकते हैं, मनमें कुछ बातें भी सोच सकते हैं। पर शब्दहीन ध्यानीके लिए यह बात नहीं है। शब्दहीन ध्यानी अपने ध्येयमें तन्मय हो जाता है, समस्त इन्द्रियोंके साथ उसका मन अपने ध्येयके चिन्तन में लगजाता है। मक्खी तो एक छोटी चीज़ है, उसके सिर पर छिपकिली या इससे भी बड़ी कोई चीज गिरपड़े तो उसको कुछ मालूम नहीं पड़ती। क्योंकि उसका शरीर मानो बिलकुल लुप्त हो जाता है। अतएव स्तुति की अपेक्षा ध्यान का महत्व हिन्दूग्रन्थों में बड़े आदरसे वर्णित है।

मनुष्योंका जीवन भी शब्दहीन और कोलाहलमय होता है। इनदोनों प्रकारके जीवनोंमें घटनाएं होती हैं, पर कोलाहलमय जीवनमें इन घटनाओं की परवा की जाती है। इन घटनाओंसे होनेवाले उथला-पथलों का अनुभव किया जाता है और शब्दहीन जीवन में इनकी कोई परवा नहीं। जिस शान्त दृष्टिसे घटनाओं को देखा उसी शान्त दृष्टिसे उनकी स्थिति और उनका अन्त

थी। वे आयीं और चली गयीं, उनका शब्दहीन जीवन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। इन दोनों जीवनों की उपमा शृगाल और सिंहके जीवनसे दी जा सकती है। शृगाल ने किसी आदमी को देखा, वह भागने लगा, छिपने का प्रयत्न करने लगा, उसका मन चिन्ताओं का सागर बन गया। पर सिंहके लिए ऐसी बातें नहीं होतीं। उसके सामनेसे कोई निकल गया, सिंह उधर ध्यान भी नहीं देता। यदि बहुत कोलाहल हुआ, तो सिंहने एक बार नजर उठाई, और एक बार कोलाहल की ओर उसने देख लिया। कोलाहलमय जीवन शृगालजीवन है और शब्दहीन जीवन सिंहजीवन है। इसी प्रकार पहाड़ी नदियां और समुद्रसे भी इन दोनों जीवनों की उपमा दी जासकती है।

हम इस बातको विचारने नहीं बैठे हैं कि इन जीवनोंमें कौनसा जीवन अच्छा है, और कौन बुरा है। चाहे जो अच्छा हो, चाहे जो बुरा हो, इससे हमको मतलब नहीं, हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि दो प्रकारके जीवन हमलोग देखते हैं।

जो जीवन ऐहिक कल्याणके लिए लगाया जाता है, वह जीवन जीवन है, और जो जीवन परलोकके कल्याणकेलिये धार्मिक बुद्धिसे लगाया जाता है, वह उपासना है। भारतीयस्त्रियोंकी पतिसेवा उपासनाही है, भारतीयस्त्रियां पारलौकिक कल्यनाकी कामनासे ही पतिसेवा करती हैं। बहुतसी स्त्रियोंने अपने इस धर्म कर्तव्यको बड़ी उज्ज्वलतासे निबाहा है, वे अपने इसकार्य में यशस्विनी हुई हैं।

जिस प्रकार जीवन कोलाहलमय और शब्दहीन होता है उसी प्रकार उपासना भी दो प्रकारकी होती है, एक उपासनामें अपनी कर्तव्यदक्षताका अभिमान रहता है, और दूसरी उपासनामें आत्म-भावके विलीन होजानेसे अहङ्कारका नामोनिशान नहीं रहता। यही अन्तिम उपासना नीरव उपासना कही जाती है। सुनिए, एक दो वैसी भारतीय स्त्रियोंका वृत्तान्त, जिन्होंने नीरव उपासनाकी है, जिनके महत्वशील कार्योंका संसारको ज्ञान नहीं, जिनके चरित्रका वर्णन महाकवियों तककी लेखनीसे नहीं हो सका है। उन स्त्रियोंमें सबसे पहला स्थान लक्ष्मणकी स्त्री उर्मिलाको दिया जाना चाहिए।

(१)

उर्मिला महाराज सीरध्वजकी कन्या थीं, और लक्ष्मणसे इनका ब्याह हुआ था। रामचन्द्रजीके ब्याहके समयमें इनका भी ब्याह हुआ था। बस, उर्मिलाके जीवनकी घटनाएं समाप्त हुईं। इसके बाद इनके जीवनकी और किसीभी घटनाका पता किसीको नहीं लगता, लगेभी कहांसे? कोई सूत्रभी तो हो। महाकवि वाल्मीकिने भी जब उर्मिलाकी जीवन घटनाओंके सम्बन्धमें एक शब्दभी कहना उचित नहीं समझा तब इनके जीवनकी घटनाएं किसीको मालूम कैसे हों?

उर्मिलाका जीवन शान्त है, स्तब्ध है। उर्मिलानेभी अपने जीवनमें अनेक कठिनाइयोंका सामना किया है, पर उन कठिनाइयों से वह विचलित नहीं हुई। उन कठिनाइयोंसे उर्मिलाके जीवनकी गति नहीं बदली।

अयोध्याके राजपरिवारमें मन्थराकाण्ड होगया, अयोध्या राज्यका सोचा हुआ भावी इतिहास पलट गया, अयोध्या राज्यकी समूची प्रजा दुःखित हुई, सबके रोने, चीखनेकी आवाज आयी, पर उर्मिलाकी आवाज सुनायी न पड़ी। रामचन्द्र वनवास से लौट आये, सब जगह आनन्द बधावे बजे, सबके चेहरे पर हंसी दिखायी दी, पर उर्मिलाको किसीने हंसते नहीं देखा। सीता जैसी साध्वीका त्याग रामचन्द्रने अतिरिक्त राजधर्मके पालनके लिये किया, पर उर्मिलाका पता नहीं मिला। क्यों? इसलिये कि उर्मिला नीरव उपासिका थीं। उर्मिलाने अपना सर्वस्व पतिमें मिला दिया था। उनका सुख दुःख अपना नहीं था, वह लक्ष्मणके रूपमें मिल चुकी थीं। उनका रोना कहां, उनका हंसना कहां, उनको न तो क्रोध है और न प्रसन्नता। उनके जीवनकी घटनाओंका फिर पता कैसे मिले?

जो उर्मिलाके जीवनकी घटनाओंका पता लगाना चाहें उन्हें लक्ष्मणके जीवनकी घटनाओं पर विचार करना चाहिये। लक्ष्मण के जीवनकी घटनाओंके स्रोतमें ही उर्मिलाके जीवन का भी स्रोत दिखायी पड़ेगा।

लक्ष्मणका जीवन प्रसिद्ध है, उसके विषयमें कुछ लिखना अनावश्यक है।

उर्मिला का एक बार और पता मिलता है, और वह उर्मिलाके रूपमें नहीं, किन्तु दूसरे रूपमें। महाराज रामचन्द्र अश्वमेधयज्ञ करने वाले थे। अश्वमेधयज्ञ केलिए उन्होंने घोड़ा छोड़ा, उस घोड़े की रक्षा केलिए उन्होंने सेना भी भेजी। उस सेनाका सेनापति था

लक्ष्मणका पुत्र चन्द्रकेतु। चन्द्रकेतुका नाम सुननेसे इसका भी पता मिलता है कि उर्मिलाके पुत्र भी था।

उर्मिलाका जीवन स्वाभाविक है। उनके जीवनको किसी कविने अपनी कल्पना द्वारा सजाया नहीं है। उनके जीवनका जो कुछ है अपना है, अतएव वह मनोहर है, हृदयसे अनुभव करने योग्य है।

(२)

नीरव उपासक स्त्रियोंमें दूसरा स्थान गान्धारीका है। गान्धारी गान्धारदेश की राजकन्या थीं। पिताने इनका ब्याह धृतराष्ट्रसे करना निश्चित किया। धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे। गान्धारी को जब यह बात मालूम हुई कि मेरा पति अन्धा है, तब गान्धारीने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। उनकी सखियोंने इसका कारण पूछा, तब गान्धारीने उत्तर दिया। उन्होंने कहा, मेरे पतिदेव अन्धे हैं, वे संसार की कोई वस्तु देख नहीं सकते, प्राकृतिक सौन्दर्य देखनेमें वे असमर्थ हैं। यद्यपि अभी तक मेरा ब्याह उनसे नहीं हुआ है, तथापि विवाह निश्चित हो चुका है, वह एक दिन होही जायगा, एक दिन मैं उनकी स्त्री अवश्य हो जाऊंगी, ऐसी दशामें मुझे क्या अधिकार है कि मैं संसार की वस्तुओं को देखूं? इसी कारण मैंने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली है! इस उत्तरको सुनकर गान्धारी की सखियां प्रसन्न और विस्मित हुईं।

गान्धारी का ब्याह यथा समय धृतराष्ट्र से हो गया। महारानी गान्धारीके एक सौ पुत्र और एक कन्या हुई। कन्याका ब्याह सिन्धुदेशके राजा जयद्रथसे हुआ था। उसका नाम दुःशला था। दुर्योधन दुःशासन आदि इनके पुत्र थे। दुर्योधन अपने

कर्मों से प्रसिद्ध है। वह बड़ा हठी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके समस्त कुलका नाश हो गया। दुर्योधन ने पाण्डवोंके साथ जो अन्याय किया, उसको गान्धारी सदा निन्दाही करती रहती थीं। गान्धारीने कभी अपने पुत्रके पापकर्मों का समर्थन नहीं किया, इससे दुर्योधन अपनी माता गान्धारी से चिढ़ा रहता था।

पाण्डवोंके साथ युद्धमें जब दुर्योधन हारनेलगा, तब वह अपनी माताके पास गया, माताने पूछा—कहो, क्या हाल है ? आजकल क्या करते हो ? युद्धके समाचार क्या हैं ? दुर्योधनने सबबातें बतलायीं, उसने अपने हारनेकी भी बात कही। माताने कहा—बेटा, युद्ध क्यों कररहे हो ? इससे क्या लाभ है ? तुम सन्धि करलो, अपने राज्य का आधा भाग पाण्डवोंको दे दो, जो इन्हें नियमसे मिलना चाहिए। दुर्योधनने माताकी बातों पर ध्यान नहीं दिया, उसने कहा – माता, मेरी एक बात सुनो, यदि तुम कृपा करो, तो यह युद्ध हम जीत जायं, नहीं तो निश्चित समझो इस युद्धमें हमारे प्राण अवश्य जायंगे।

पुत्रके अनिष्टकी आशङ्काभी वात्सल्यमयी माताको अधीर बना देनेकेलिए काफी है। चाहे कुछभी स्वयं हो, चाहे जितना कष्ट उठाना पड़े, माता खुशीसे स्वयं सब कष्टोंको उठावेगी, पर पुत्रको कष्टोंका सामना न करने देगी। गान्धारीने जब सुना कि उनका पुत्र अपनी मृत्यु का निश्चित संवाद दे रहा है, तब वे एक बार अधीर हो गयीं। उन्होंने अपने पुत्रसे कहाकि कहो, हमको क्या करना होगा ? तुम्हारे कल्याणके लिए वह मैं कर सकती हूं।

पुत्रने कहा, माता ! तुम पतिव्रताहो ! पतिव्रतामें बड़ी शक्ति है !

संसारमें ऐसा कोई भी काम नहीं जो पतिव्रता न कर डाले ! पतिव्रताकी वाणी में वह शक्ति होती है कि वह जो कहे सो होजाय ! जो बात संसार में असंभव समझी जाती है, वहभी यदि पतिव्रता के मुंहसे निकलजाय तो वह होही जाती है ! तुम यदि अपने मुंहसे कहदोगी—इस युद्धमें दुर्योधन विजयी होवे, तो यह निश्चित है कि मेरीही विजय होगी !

गान्धारी के सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित हुई; इधर पुत्रप्रेम उधर धर्महानि। गान्धारी यह बात जानती थीं कि मेरा पुत्र अधर्मी है, वे यह भी जानती थीं कि विजय धर्मसे होती है। उन्हें अपनी शक्तिका भी ज्ञान था, उन्हें मालूम था कि मेरी वाणी असत्य नहीं हो सकती, पर उनके सामने कठिन प्रश्न यह था कि क्या मैं एक अधर्मीका पक्ष लूं ? क्या मैं एक अधर्मी की विजय-कामना करूं ? यह ठीक है कि वह अधर्मी मेरा पुत्र है, पर पुत्रके लिए धर्मत्याग करना, अधर्मका पक्षलेना, तो उचित नहीं। इन्हीं बातोंको सोचकर गान्धारीने उत्तर दिया—बेटा, धर्म करो, विजय धर्मसे होती है, विजयके लिए धार्मिक बनना आवश्यक है !' दुर्योधन चला गया।

महाराज धृतराष्ट्र कईबार पुत्रमोहके अधीन होकर अपना कर्तव्य भूल जाते थे, उन्हें धर्ममार्ग का स्मरण नहीं रहता था। उनकी बड़ी शोचनीय दशा हो जाती थी, इधर भी बोलते थे और उधर भी। उनका कोई सिद्धान्त नहीं रहता था, महाराज धृतराष्ट्र के जीवन में ऐसा अनेक समय आया है, पर गान्धारी सदा अचल बनी रही हैं, कठिनसे कठिन समय में भी ये अपने धर्म को नहीं भूल सकी हैं।

गान्धारीके जब सब पुत्र मारे गये, केवल दुर्योधन बचा रहा, तब उन्होंने दुर्योधनको बुलाकर समझाया, पर कौन सुनता है? वह परले सिरेका हठी था, उसने अपनी माताके हितकर एकभी वचन नहीं सुने। पुत्रकी दशा देखकर गान्धारी चिन्तित हुईं, उन्होंने कहा, अच्छा! एक दिन नंगे शरीर आकर हमारे सामने खड़े हो, हम तुम्हें देखना चाहती हैं। ऐसा कहनेका गान्धारीका यह मतलब था, कि हम इसके समस्त शरीरको देखलेंगी तो इसका शरीर वज्रके समान दृढ़ हो जायगा। तब इसके शरीरकी हानि शत्रुके प्रबलसे प्रबल अस्त्र, शस्त्रोंसे भी न होगी। दुर्योधनने माताकी आज्ञाका पालन किया। वह नङ्गा शरीर आया अवश्य, पर एक लंगोटा पहने था। गान्धारीने देखा। गान्धारी समझ गयीं—दैव प्रतिकूल है, दुर्योधनभी नहीं बच सकता। क्योंकि दुर्योधनके शरीरका जो भाग लंगोटेसे छिपा था, उसे गान्धारी नहीं देख सकी, इसलिए वह अंग निर्बलका निर्बल बना रहा। भीमने उसी स्थान पर गदा मार कर दुर्योधनको इस लोकसे विदा किया था।

गान्धारीका जीवनभी नीरव उपासनाका जीवन है। गान्धारीने भी अपना अस्तित्व पतिके अस्तित्वमें मिला दिया था। अतएव कौरव और पाण्डव कुलमें अनेक घटनाएं हुईं, उन घटनाओंके साथ समस्त भारतका इतिहास पलट गया, भारतके समस्तवीरोंका नाश होगया, भारतकी सभ्यता जर्जर होगयी। पर गान्धारीका कहीं पता नहीं। गान्धारीको लोगोंने देखा है धृतराष्ट्रके साथ, पर गान्धारीका जीवन धृतराष्ट्रके जीवनके साथ मिल कर नहीं प्रवाहित हुआ है, और उसका पृथक प्रवाहभी नहीं दीख पड़ता धृतराष्ट्र

गान्धारीका पति अवश्य था, पर एक पतिव्रताके पति होनेकी उसमें योग्यता नहीं थी, वह एक नीरव उपासिकाके पति होनेके उपयुक्त नहीं था। इसी कारण गान्धारीका जीवन स्रोत बन्द रहा, उसे मैदानही नहीं मिला, उसे रास्ताही नहीं मिला।

महाभारत युद्धके समाप्त होने पर गान्धारी अपने पति धृतराष्ट्रके साथ बनमें आयीं और वहां पतिसेवा करती हुई इन्होंने परलोककी यात्रा की।

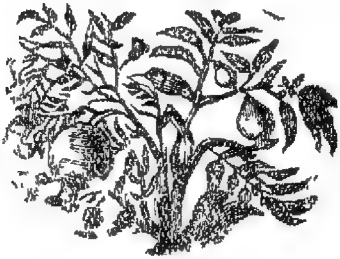

स्वामि-भक्ति।

स्वामि भक्ति एक उत्तम गुण है। स्वामी अपने भृत्यका विश्वास करता है, सुखमें दुःखमें भृत्य और स्वामी का संबन्ध बना रहता है। जो भृत्य स्वामीके सुखके समय सुख उठाता है वह उसके दुःखके समय दुःख उठानेके लिए भी तैयार रहता है। ऐसा करना भृत्य के लिए नितान्त आवश्यक और उचित है। क्योंकि भृत्यभी स्वामी के परिवारका एक अंग हो जाता है, स्वामी उससे उतनाही प्रेम रखता है, उस पर उतनाही विश्वास रखता है जितना कि परिवार के दूसरे लोगों पर।

इस समय स्वामी और भृत्यका सम्बन्ध कहाही कलुषित हो गया है। इनका प्रेमात्मक सम्बन्ध दूर गया है, केवल व्यापारीय सम्बन्ध रह गया है। स्वामी समझता है कि भृत्यके सुख दुःखकी ओर ध्यान देना हमारा कर्तव्य नहीं। हमतो अपनी आवश्यकताके लिए भृत्य रखते हैं। हमारी आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए, इसके लिए हमें जितना कम देना पड़े उतना ही अच्छा। भृत्य भी यह बात जानते हैं। वे समझते हैं, स्वामी हमें अपनी आवश्यकताके लिए रखे हुए हैं, हमारे सुख दुःखों की ओर इनका ध्यान नहीं, इन्हें अपने सुखसे मतलब, इन्हें अपने कामसे मतलब। मैं मरूं चाहे जो हो इस बातकी ओर स्वामीका ध्यान नहीं। मैं

मर जाऊंगा, बीमार पड़जाऊंगा, स्वामी दूसरा नौकर रखेंगे। इस समय स्वामी और भृत्यके ऐसे विचार हो गये हैं, और इस विचार के कारण स्वामी भृत्यका सम्बन्धभी बड़ाही कलुषित हो गया है।

प्राचीन भारतमें यह बात नहीं थी। यह संबन्ध बड़ा पवित्र समझा जाता था। स्वामी सेवक की सुविधाओंका ध्यान रखता था, उसको दुःख न होने देता था, उसकी देखरेख रखता था। भृत्यभी स्वामीके विश्वासपात्र होते थे, वे स्वयं कितना ही कष्ट उठाते थे, पर स्वामी को कष्ट नहीं होने देते थे। स्वामीको वे देवता समझते थे, भला देवताको कष्ट हो और पुजारी यह बात चुपचाप देखता रहे यह कैसे सम्भव हो सकता है? इसी लिए हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में सेवकों ने स्वामी के लिए इतना उज्ज्वल त्याग किया है, जिसकी कथा सुनकर आश्चर्य करना पड़ता है, स्वामि सेवा के लिए आत्मत्याग करने वाले उन सेवकोंके सामने सिरझुकाने की इच्छा होती है। इस गुणमें स्त्रियोंने जिस प्रकार अपनी योग्यता दिखायी है वह भी अतुलनीय है, आश्चर्यमय है! मैं उदयपुरके महाराना वंशकी एक सेविकाकी बात लिखना चाहता हूं। पाठक और पाठिकाएं उसे पढ़ें।

महाराना संग्रामसिंहके पश्चात् उदयपुरके सिंहासन पर महाराना विक्रमाजित बैठे। विक्रमाजित एक अयोग्य महाराना था, उसने अपनी अयोग्यतासे चित्तौरके सरदारोंको अप्रसन्न कर दिया। वह नीचोंके साथ रहा करता था। नीचोंका आदर करता था। उसके दरबारमें नीचोंका दौरदौरा था। वीर राजपूतोंका वहां अपमान होता था। यह बात राजपूतोंको बहुत बुरी लगी, और वे अप्रसन्न होकर घर बैठ रहे

शत्रु अपने प्रतिद्वन्द्वीकी दुर्बलताही देखा करता है। जहां प्रतिद्वन्द्वी दुर्बल हुआ और शत्रुने उस पर चढ़ाई की। महाराना संग्रामसिंहने गुजरात और मालवाके पठानोंको कईबार जीता था। संग्रामसिंहके समयमें उनसे कुछ करते धरते नहीं बना। जब उन लोगोंने महाराना विक्रमाजितसिंहकी दशा सुनी तब एक बार फिर उन लोगोंने चित्तौर पर चढ़ाई करनेका साहस किया। महाराना विक्रमाजितसिंहका बल क्षीण हो गया था। सभी सरदार उनसे अप्रसन्न हो गये थे। खुशामदियोंसे क्या हो सकता है? वे गाढ़े समय पर काम थोड़े आ सकते हैं। महाराना की हार हुई।

उस समय राजमाता कर्णावतीने हुमायूंशाहके पास राखी भेजी। उस समय राजपूत स्त्रियां अपनी सहायताकेलिए राखी भेजा करती थीं, और कोई भी वीर उस राखीको अपने लिए सौभाग्यकी बात समझता था। हुमायूंने राखी ले ली, उसने राजमाता कर्णावतीको कहवाया— बहिन, तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। तुम्हारा राज्य इस समय संकटमें है यह मैं जानता हूं। मैं स्वयं सेना लेकर आता हूं और तुम्हारे सब शत्रुओंको मार भगाता हूं। मैं कुछ दिनों तक वहां रह कर तुम्हारे राज्यका प्रबन्ध भी कर दूंगा। इस बातसे कर्णावतीको भरोसा हुआ। हुमायूं अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार आया, और पठानोंको चित्तौरसे निकाल बाहर किया। विक्रमाजित फिर गद्दी पर बैठे। हुमायूंने कुछ दिनों रह कर राज्यका प्रबन्ध किया। पुनः वे दिल्ली लौट गये

आदत बुरी होती है, वह नहीं छूटती। महाराना विक्रमाजित ने इतनी दुर्दशा भोगी, पर वे अपनी आदतसे लाचार थे। "वही रफ्तार बेढंगी" बनी रही। इधर राजमाताका शरीरान्त हुआ। अब कोई सिर पर नहीं, उच्छृङ्खल महाराना परम स्वतन्त्र हो गये। लगे मनमाना करने। उनका अत्याचार असह्य हो उठा। प्रजा त्रस्त हो गयी, चारों ओर हाहाकार होने लगा। सरदार भी व्याकुल हुए, उन लोगोंने मिलकर विक्रमाजित को महारानाकी पवित्र गद्दीसे उतार दिया, और महारानाके दासी पुत्र बनवीरको महाराना बनाया। एक कांटा दूर हुआ पर दूसरा शाल तैयार हुआ। सरदारोंने बनवीरको तब तक केलिए महाराना बनाया, जब तक महारानाके छोटे पुत्र उदय सिंह राजकाज देखने योग्य न हो जायं। इस समय उदय सिंह की अवस्था छः वर्ष की थी।

राज्यका लोभ बड़ा भारी लोभ है, राज्यके लोभमें पड़ कर मनुष्य कितना भारी अनर्थ नहीं कर देता! यदि राज्यके लोभमें पड़ कर मनुष्य अनर्थ न करता, अत्याचार और अन्याय न करता तो कभी राज्यकी इतनी निन्दा न होती। बनवीरने अकण्टक राज्य भोगनेका मनसूबा गांठा। विक्रमाजित का तो कुछ भय था ही नहीं, वह अपनी अयोग्यतासे महाराना पद केलिए अनुपयुक्त सिद्ध हो चुका था। अब रह गये उदय सिंह, बनवीरने उदय सिंह को मारकर अपना राज्य निष्कण्टक करना चाहा।

उदयसिंह की माता नहीं थीं, वह पन्ना नामकी एक दाईकी देख-रेखमें रहता था। पन्नाके पुत्र और उदय दोनोंकी उमर बराबर थी। दोनों साथ खेलते थे, दोनों साथ रहते थे। पन्ना दोनोंको समान समझती थी

वनवीरने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया था। उसने एक रात इस कामके लिए नियत की थी। रात, तुम शान्तिदायिनी हो, पर संसारके अधिकांश कुकृत्य तुम्हारेही आश्रयमें होते हैं। तुम्हारा यह कलङ्क है; और चन्द्रमाकी शीतल और सुन्दर किरणोंके प्रवाहसे भी तुम्हारा यह कलङ्क धोया नहीं जा सकता।

वनवीर विक्रमाजितके कमरेमें गया और वहां वह उसका वध करने लगा। एक बारीने यह बात देखी, उसे यह निश्चय हो गया कि आज उदयकी भी खबर नहीं। वह शीघ्रही पन्नाके पास पहुंचा। किवाड़े बन्द थे, किवाड़े खटखटाये, सावधान होकर पन्नाने किवाड़े खोले। बारीने होनेवाली दुर्घटनाके संवाद सुनाये। पन्ना उस समय बिलकुल नहीं घबड़ायी, वह थोड़ी देर तक विचारमें पड़ी रही, पुनः वह बोली, बारी, इस समय महारानावंशका चन्द्र छिपना चाहता है, और वह सदाके लिए छिपना चाहता है। जानते हो, इस समय हमलोगोंका कर्तव्य क्या है?

बारीने उत्तर दिया—आत्मत्याग, स्वयं प्राण देकर महारानाके वंशकी रक्षा करना।

पन्नाने कहा—पत्तलका एक टोकरा शीघ्र ले आओ।

बारी चला गया, और टोकरा लेकर शीघ्र लौट आया। पन्नाने टोकरेमें उदयको रखा और ऊपरसे पत्तल रख कर उसे छिपा दिया। बारीने कहा, क्या एक और टोकरा ले आऊं?

पन्नाने कहा—नहीं।

बारी—चन्दन कैसे बचेगा? पन्नाके पुत्रका नाम चन्दन था।

पन्नाने कहा—बारी, देर करनेका समय नहीं है, तुम इस टोकरेको लेकर बीरा नदीके तीर पर चलो, मैं शीघ्रही आती हूं।

बारीने कहा—चन्दनको लेकर तुमभी साथ क्यों नहीं चलती? पन्नाका गला भर आया। उसने कहा—बारी, क्या तुम समझते हो, चन्दन और उदय दोनों बच जायंगे? तुम उदयको लेकर चलो, उसे बचाओ।

बारीने कहा—साफ़ कहो, तुम क्या चाहती हो, तुम उदयकी रक्षा कैसे करोगी?

पन्ना ने कहा—यह बात मुझसे न पूछो, इस बातके कहते मेरा हृदय फटता है।

बारीने कहा—क्या तुम उदयके बदले चन्दनको बलि दोगी।

पन्नाने कहा—अवश्य! चन्दनका यह कर्त्तव्य है, यह उसके गौरवकी बात है। राजपूतका जीवन देश, धर्म और अपने राजाके लिए है। चन्दनको एक न एक दिन अपना जीवन अपने धर्मपालनके लिए, अपने देशके लिए, अथवा अपने महारानाके लिए अवश्य देना होगा। यदि भाग्यसे वह समय आजही उपस्थित हो गया, तो चन्दन क्यों चूके। बस, अब जाओ, अधिक देर करना अच्छा नहीं।

बारी टोकरा लेकर चला, बनबीर तलवार लिये पहुंचा। उसने पन्नासे पूछा—उदय कहां है? पन्नाने चन्दनको बता दिया। बनबीर छुरी भोंक कर उदयके स्थान पर चन्दनको मार कर चला गया, पन्नाने अपने पुत्रको मरते देखा। एक माताने अपने पुत्र को घातकके हवाले किया। क्या वह राक्षसी थी? नहीं वह

देवी थी। वह कर्तव्यकी शिक्षा देनेवाली देवी थी। उसने कहा—चन्दन गया, इसने मुझको कष्ट हुआ, पर चन्दनने अपना कर्तव्य पालन किया, उसने क्षत्रियधर्मका पालन किया। उसने अपने प्राण देकर महाराणाके वंशकी रक्षाकी। कितना पवित्र कृत्य है; मैं चन्दनकी माता हूं, क्या मेरा यह कर्तव्य है कि अपने सुखके लिए पुत्रको कर्तव्य पालन न करने दूं? नहीं! यह कायर और नीच स्त्रियों का कर्तव्य है। मैं दासी हूं, इसलिए क्या? महान् कार्यों को करनेका अधिकार क्या दासियोंको नहीं होना? धर्मराज्य में छोटा बड़ा कोई नहीं। सभी धर्मपालन कर सकते हैं। छोटे बड़ेका भेद मनुष्योंने बनाया है। मानवी दृष्टिसेभी छोटोंको अधिक धर्म करनेका अधिकार है, क्योंकि वे छोटे हैं, उन्हें बड़ा बनना है, धर्मपालन ही तो मनुष्यको बड़ा बना सकता है।

ये पन्नाके हृदयके भाव हैं। ऐसे उच्चभाववाली स्त्रीको कौन राक्षसी कह सकता है? जिसने देशकी रक्षाके लिए, अपने राजवंशकी रक्षाके लिए, अपने हृदयके खूनको बहाया, क्या वह राक्षसी है? फिर, देवी कौन है?

पन्ना चन्दनका शव लेकर वीरा नदीके तीरपर पहुंची। वहां बारी पहलेहीसे उदयको लेकर पहुंचा था। पन्ना और बारीने मिल कर चन्दनके शवका संस्कार किया। पन्नाको अपने पुत्रके लिए आंसू बहानेका भी अवसर नहीं मिला। प्रातःकाल होनेके पहलेही वह उदय को किसी सुरक्षित स्थानमें पहुंचा देना चाहती थी। वह जानती थी कि प्रातःकाल हो जानेपर उदय की रक्षा नहीं हो सकती। जिस उदयकी रक्षाके लिए पन्नाने अपने पुत्रका

बलिदान देखा, उसकी रक्षाके लिए वह असावधानी कैसे कर सकती है ? वह त्रुटि कैसे कर सकती है ?

वह आशासाह नामक एक सरदारके यहां पहुंची, और वहां ही उदय सिंहके रखनेका प्रबन्ध किया। उदय सिंह वहां रहने लगे। इनका पालन, पोषण होने लगा।

वनवीरने अपनेको निष्कण्टक समझा। उसने समझा कि अब चित्तौरके सिंहासन का कोई अधिकारी न रहा। मेरा सामना करनेवाला कौन है ? इस समझने उसके अत्याचारको बढ़ा दिया। अब वह जो चाहता वही करता, प्रजा वनवीरके अत्याचारसे व्याकुल हो उठी, वह हाहाकार करने लगी। सरदार भी व्याकुल हो गये। सरदारोंको अपनी गलती मालूम हुई। वे बड़ी चिन्तामें पड़े। महारानाके वंशमें कोई है नहीं, अब उदयपुरका सिंहासन किसको दिया जाय ? वनवीरको राज्यच्युत करना कोई बड़ी बात नहीं, पर महाराना कौन बनाया जाय इसकी चिन्तासे सरदार अधीर हो गये।

उदयकी अवस्था राज करनेके योग्य हो गयी थी, आशासाहने उदयके व्याहकी तैयारी की। उन्होंने सब सरदारों को निमन्त्रित किया। बड़े उत्साहसे व्याहकार्य सम्पादन हुआ। पन्नाने उदय सिंहका परिचय सरदारोंसे कराया, उदयकी रक्षा कैसे हुई यह बात बतलायी। सरदारोंने पन्नाके चरणों पर सिर रखा, उसकी वीरता और त्यागकी प्रशंसाकी। उससे स्वयं शिक्षा ग्रहण करनेकी उनलोगोंने प्रतिज्ञा की, उदयका वहीं राज्याभिषेक हुआ, वनवीर सिंहासनसे उतारा गया, पन्नाके त्यागका आनन्दमय फल सब प्रजाने भोगा।

वीरता और सतीत्वरक्षा।

एक संस्कृतके महाकविने कहा है कि जिस मनुष्यकी बुद्धि कोमल कान्तपद काव्यके अनुशीलनमें लगी हुई है, क्या वह बुद्धि कठिन तर्क शास्त्रकी बातें समझनेमें कुण्ठित हो सकती है? कोमलता और कठिनता कोई स्वाभाविक गुण नहीं है; परिस्थितिके अनुसार मनुष्य कोमल और कठिन होता है। जैसा अवसर आता है वैसा होना पड़ता है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी मनुष्य कठिन हो सकते हैं और सभी कोमल भी हो सकते हैं। जो सहृदय हैं, जिनमें मनुष्यत्व है, उन्हींके विषयमें यह बात कही जाती है। बहुतसे मनुष्यनामधारी ऐसे भी शरीर दिखायी पड़ते हैं जिनके सामने चाहे कैसीही परिस्थिति क्यों न उत्पन्न हो, उनमें कुछ तबदीली नहीं होती, वे जहांके तहां बने रहते हैं।

संसारकी स्त्रियां कोमलताके लिए प्रसिद्ध हैं, स्त्रियोंका हृदय स्वाभाविक दयार्द्र होता है। दुःखियोंकी रक्षा करना, पीड़ितोंकी पीड़ा दूर करना, स्त्रियोंका प्रधान धर्म समझा जाता है और वह है भी। पर कब तक? जब तक उनके धर्ममें बाधा न पहुंचे, उनका अपमान न हो। स्त्रियां अपना अपमान नहीं सह सकतीं, अपने सतीत्वकी ओर बुरी दृष्टिसे देखनेवालेको कभी वे क्षमा नहीं कर

सकतीं, वे अपने देशके शत्रुओंको, धर्मके नाशकोंको, कभी दयाकी दृष्टिसे नहीं देख सकतीं। उस समय वे अपनी वीरता प्रकाशित करेंगी, अपना पराक्रम प्रकट करेंगी। उस समय वे अपने उस असीम बलका उपयोग करेंगी कि जिसे देख संसार चकित होगा। बड़े बड़े वीरोंके छक्के छूट जायंगे। स्त्रियां लक्ष्मी और सरस्वती रूपसे जिस प्रकार सुख, समृद्धि और ज्ञान विस्तार करना जानती हैं, उसी प्रकार कालीका रूप धारणकर शत्रुओंका नाश करना भी जानती हैं, दुष्टोंको दण्ड देना भी जानती हैं।

मैं इस समयकी भारतकी स्त्रियोंकी बात नहीं कहता। इस समय ये वीरताका नाम तक भी नहीं जानतीं। इस समय अपने सन्तानकी रक्षा करनेकी शक्ति इनमें नहीं है। आज ये एक प्रकार की जड़ वस्तु हो गयी हैं। जिस प्रकार जड़ पदार्थ अपनी रक्षा आप नहीं कर सकते, उनकी रक्षाका भार उनके स्वामियों पर रहता है, उसी प्रकार स्त्रियोंकी भी दशा है। पर प्राचीन 'भारतीय स्त्रियां ऐसी नहीं हैं। उन लोगोंने आवश्यकता पड़ने पर बड़ी वीरता दिखायी है, बड़ी बड़ी सेनाओंका सामना किया है, अपने अपमानकारियोंको, अच्छा दण्ड दिया है, अपने सतीत्व की रक्षाकेलिए, अपने देश और धर्मकी रक्षाकेलिए, अपना पराक्रम प्रकाशित किया है। उन प्रातःस्मरणीया वीराङ्गनाओंका चरित्र अपने वाचक और वाचिकाओंके सामने रखना चाहता हूं। वह इसी लिए नहीं, कि आपका केवल मनोरञ्जन हो, आप उसे पढ़ कर वाह वाह कर दें, किन्तु आप उसे पढ़ें और अपना आदर्श निश्चित करें, भारतीय सभ्यताका दर्शन करें भारतीय स्त्रीजातिके

गौरवका अनुभव करें, भारतीय स्त्रियोंको अयोग्य कहनेवाले नादानोंकी ओर उपेक्षा करें।

(१)

चित्तौरके राना भीमसिंहकी स्त्रीका नाम पद्मिनी था। पद्मिनी बड़ी सुन्दरी थी। यह सिंहलदेशकी राजकन्या थी। बङ्गालके एक राजकुमार कुछ कारणोंसे सिंहलमें चले गये थे और वहां उन्होंने अपने बाहुबलसे राज्यस्थापन किया था, पद्मिनी उसी राजवंशकी राजकुमारी थी। उसका ब्याह चित्तौरके महाराना भीमसिंहसे हुआ था।

राना भीमसिंह चित्तौरके महाराना नहीं थे। ये महाराना लक्ष्मणसिंहके चचा थे। महाराना लक्ष्मणसिंह बड़ी छोटी अवस्थामें ही गद्दी पर बैठे थे। उस समय वे अपना राज्यभार नहीं सम्भाल सकते थे, इस कारण उनके चचा भीमसिंहही राज्यका भार सम्भालते थे, वेही राज्यशासन करते थे। पद्मिनी उन्हीं की स्त्री थी।

दुर्भाग्यवश उस समय भारतमें ऐसे विदेशी राजाओंका प्राधान्य हो गया था कि उन्हें राजाके बदले लुटेरा कहनाही अधिक न्यायसंगत जान पड़ता है। इसी प्रकारका एक विदेशी उस समय दिल्लीका बादशाह था। किसीके पास अच्छा घोड़ा हुआ, किसीके पास अधिक धन हुआ, किसीके पास कोई भी अच्छी वस्तु हुई, और उसकी खबर बादशाह को लगी, बस, उसी समय आज्ञा होती थी, यह वस्तु बादशाहके लायक है। इसी प्रकारकी धांधली मची हुई थी और तो और, किसीकी सुन्दरी स्त्री भी बादशाहके

ही लायक समझी जाती थी, बादशाहको खबर मिलनी चाहिए कि अमुककी स्त्री सुन्दरी है, फिर आज्ञा जारी होते देर नहीं होती थी। यदि किसीने धर्म, कर्मका विचार छोड़कर, लोक, परलोकका विचार छोड़ कर, आज्ञा मान ली तब तो ठीक, नहीं तो बादशाह उससे युद्धके लिए तैयार हो जाता था। पद्मिनीके सौन्दर्यकी भी बात बादशाहने सुनी। बादशाह यह बात जानता था कि मेवाड़के महाराना मेरी आज्ञा नहीं मानेंगे, अतएव उसने युद्धके द्वारा पद्मिनीको लेनेका विचार किया। बादशाह अपनी सेना लेकर चित्तौर पर चढ़ गया। राजपूतोंने जब बादशाहका अभिप्राय सुना तब वे बड़े बिगड़े, उन्होंने भी युद्धकी तैयारी की। दोनों ओरके वीर युद्ध करने लगे। बहुत दिनों तक युद्ध हुआ। बादशाहकी बड़ी हानि हुई। बादशाह घबड़ाया, उसने महारानाके पास संवाद भेजा कि मैं केवल पद्मिनी को देखना चाहता हूं। यदि आप पद्मिनीको मुझे दिखा दें, तब मैं निश्चय दिल्ली लौट जाऊंगा। आशा है, आप मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार करेंगे और अनर्थक हानि उठानेसे अपनेको और हमको बचावेंगे।

राना बड़ी चिन्तामें फंसे, क्या उत्तर दें? इसी का विचार वे करने लगे। पद्मिनीने भी यह बात सुनी। उसने रानासे कहा—स्वामी! आप इस छोटीसी बातके लिए चिन्तित क्यों होते हैं? अलाउद्दीनकी बातें आप मान लीजिए, मैं कोई देवी नहीं, यदि वह मुझे देखना चाहता है, देख ले, अनर्थक हानिसे चित्तौरकी रक्षा हो। एक बड़ा शीशा रखवा दीजिए उसीके सामने मैं खड़ी हो जाऊंगी मेरा प्रतिबिम्ब वह देख लेगा उसकी बातें रह

जायगी, कोई हानि भी न होगी, मैं तो इसे ठीक समझती हूं। अब आप जैसा उचित समझें करें।

महाराना भीमसिंहने पद्मिनीका कहना मान लिया, और अलाउद्दीनको पद्मिनीके देखनेके लिए निमन्त्रित किया। अलाउद्दीन आया, और उसे पद्मिनीका प्रतिबिम्ब दिखा दिया गया। अलाउद्दीनने पद्मिनीके जैसे सौन्दर्यकी कल्पनाकी थी, उससे कहीं अधिक उसने पद्मिनीके प्रतिबिम्ब-सौन्दर्य देखा। वह अपनी प्रतिज्ञा भूल गया। उसे अपने विचार शीघ्र बदलने पड़े। उसने समझा था कि पद्मिनीके लिए जो उत्कण्ठा मेरे हृदयमें उत्पन्न हुई है वह उसके देखनेसे शान्त हो जायगी। पर बात ऐसी नहीं है, ऐसा सोचनेवाला मूर्ख है। घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी ज्वाला घटती नहीं, किन्तु बढ़ती है। पद्मिनीकी रूपमाधुरी पर अलाउद्दीन विवश हो गया। युद्धसे वह ऊब गया था। अब उसने धूर्ततासे काम लेना निश्चित किया। उसने महाराना भीमसिंहको अपने यहां निमन्त्रित किया। राना भीमसिंह बादशाहके निमन्त्रणमें गये। बादशाहने रानाको कैद कर लिया। उसने पद्मिनीके पास कहवा भेजा कि राना भीमसिंह हमारे यहां कैद हैं। वे तब तक नहीं छूट सकते जब तक हमारे यहां पद्मिनी न आवेगी। शीघ्र इसकी व्यवस्था होनी चाहिए, देर होनेसे रानाके प्राणोंका भी सन्देह होगा।

पद्मिनीको यह पत्र मिला। 'शठे शाठ्य'की नीतिका बर्तनाही पद्मिनीने उचित समझा। उसने बादशाहको एक पत्र लिखा। उसमें लिखा मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण चित्तौरके रानाका

नाश हो। बादशाह मुझे चाहते हैं, मैं आनेको तैयार हूं। पर इस सम्बन्धमें एक दो बातें मैं कहना चाहती हूं—विश्वास है कि बादशाह मेरी बातोंको स्वीकार करेंगे। १—मेरे साथ कुछ दासियां आवेंगी, उनकी संख्या सात आठ सौ से अधिक न होगी। उनमें कुछ तो मेरे साथ दिल्ली चलेंगी और कुछ यहीं मुझे पहुंचा कर लौट आवेंगी। ये सब स्त्रियां राजपूतनी होंगी। २—जहां मेरी दासियां उतरेंगी वहां किसीका पहरा न रहना चाहिये, क्योंकि वैसी दशामें मैं और ये भी अपनेको दासी समझेंगी। ३—आपके शिविरमें जानेपर सबसे पहले मैं थोड़ी देरके लिए भीमसिंहके पास रहूंगी, क्योंकि आज तक मैं उनकी स्त्री रही हूं, और वे मेरे पति। अतएव अन्तिम समय उनसे एकवार मिल लेना मैं आवश्यक समझती हूं। इन तीन बातोंकी आपकी स्वीकृति मिलतेही मैं आपके यहां आनेका प्रबन्ध करूंगी।

अलाउद्दीनने सब बातें मञ्जूर कर लीं, वह अन्धा हो गया था। विलासियोंकी ऐसी दशा होतीही है। पद्‌मिनीकी दासियोंकी पालकी बादशाही शिविरमें जाने आने लगी। कुछ रोक टोक नहीं, एक पालकीमें पद्‌मिनी गयी, और भीमसिंहको अपनी पालकीमें बैठा कर चित्तौरके किलेमें ले आयी। अलाउद्दीन बैठा बैठा पद्‌मिनीकी राह देखता रहा, बहुत समय बीत गया, पद्‌मिनी नहीं आयी। वह अधीर हो गया। अपने खेमेसे बाहर निकल कर वह शिविरकी ओर आया। वहां जो दृश्य उसने देखा उससे उसे अपनी गलती स्पष्ट मालूम पड़ी

पद्मिनी ने डोलियों में दासियां नहीं भेजी थीं, किन्तु डोलियोंमें वीर क्षत्रिय बैठे थे। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भीमसिंह और पद्मिनी सकुशल किलेमें पहुंच गये, तब एक एक डोलीसे दो दो वीर क्षत्रिय निकलने लगे, और निकल कर मुसलमानोंको काटने लगे। मुसलमानी सेनामें भगेड़ मच गयी। एक तो मुसलमानी सेना पहलेही युद्धमें बहुत छीज चुकी थी, दूसरे इस समय वह असावधान थी। क्षत्रियोंने मुसलमानों पर खूब हाथ साफ किये।

बादशाह इस घटनासे हताश होगया। वह अपनी सेना लेकर दिल्ली पहुंच गया। पर उसके मनसे पद्मिनीके मिलनेकी आशा दूर न हुई। बेशर्मीकी सीमा तो होतीही नहीं। दूसरेकी स्त्री के लिए लड़ाई, सो भी इस लड़ाईका लड़नेवाला स्वयं दीन दुनियाका मालिक बादशाह। कितनी घृणित और निन्दित बात है, पर यह सब उसके लिए है जो लोकापवादसे डरता हो, जिसके सामने धार्मिकता और नीतिमत्ताकी महत्ताहो।

बादशाह फिर एक बार चित्तौर पर चढ़ आया। राजपूत बिलकुल निर्बल हो चुके थे। पहलेकी लड़ाइयोंमें प्रायः सभी वीर काम आ चुके थे। फिरभी राजपूतोंने बादशाहकी सेनाका सामना किया, वे बहादुरीसे लड़े, और युद्धमें अपनी इज्जतके लिए लड़ कर, अपने राजाकी मर्यादाके लिए प्राण देकर, स्वर्गलोकके प्रतिष्ठित नागरिक बने। भीमसिंह, लक्ष्मणसिंह आदि सभी मारे गये। राजकुमार अजयसिंहको छोड़ कर महाराणाके परिवारके समस्त वीर काम आये।

अलाउद्दीन प्रसन्न हुआ। वह चित्तौरके किलेमें घुसा, उसने समझा था कि महारानी पद्मिनी विजयी बादशाहका स्वागत करेगी। पर वहांका दृश्यही कुछ दूसरा था। सभी महल खाली पड़े थे। राजमहलके सामने बड़ी चिता जल रही थी, उसी चितामें पद्मिनी आदि सभी राजपूत स्त्रियां जल चुकी थीं। मूर्ख अलाउद्दीन हाथ मल कर रह गया। वह चाहता था पद्मिनीको, पर उसे कुछभी नहीं मिली। भाग्यकी लीला!

(२)

बीकानेरके राजा महाराज पृथिवीराजकी महारानीने कैसी दिलेरी और बहादुरीसे अपने सतीत्वकी रक्षाकी यह बात सुनने लायक है। बीकानेरके महाराजने भी अन्य राजपूत राजाओंके समान दिल्लीके बादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। पर बेबसीसे, शौकसे या लोभसे नहीं इस कारण पृथिवीराजको वर्षमें कुछ महीने दिल्लीमें बादशाहकी दरबारदारीके लिए रहना पड़ता था। अबकी बार भी वे दिल्लीहीमें थे। उनकी महारानी महाराना प्रतापके भाई शक्तसिंहकी कन्या थीं। वे भी अपने पतिके साथ दिल्लीहीमें रहती थीं। इनके जीवनकी एक घटना बड़ीही उज्ज्वल है, उसे मैं सुनाना चाहता हूं।

उस समय दिल्लीके बादशाह अकबरशाह थे। अकबरशाह बड़े ही नीतिवेत्ता बादशाह थे। इन्होंने अपनी मृदु नीतिसे वह काम किया जो बड़े बड़े जालिमोंकी क्रूर नीतिसे नहीं हो सका था। फिर भी बादशाह सर्वप्रिय थे। महाराना प्रतापको छोड़ कर समस्त भारतके राजाओंको इन्होंने अपने अधीन कर लिया था सभीको

सिर बादशाहके सामने झुकता था। बादशाहकी प्रामाणिकता, पवित्रता और सदाचारिताका पूरा विश्वास हिन्दू राजाओंको था। बादशाहके इन गुणों पर हिन्दू राजा मुग्ध हो गये थे। इससे बादशाहको बड़ा फल हुआ, हिन्दू राजाओंकी उन्हें सहायता मिली और सहायताके बल परही बादशाह अपना आधिपत्य भारतमें फैला सके थे।

पर बादशाहमें एक बड़ा गुण यह था कि वे अपनेको जैसा बाहर दिखाते थे सचमुच वैसे थे नहीं। उनमें और कौन कौनसे दुर्गुण थे, उनका अभिप्राय क्या था, इस बात पर विचार करनेका अधिकार राजनीतिशास्त्रके अध्ययन करनेवालोंका है; मैं तो उनकी एक बातका उल्लेख करना चाहता हूं। बादशाहने नौरोजा नामका एक मेला लगाना प्रारंभ किया था। यह वर्षारम्भमें मुसलमान देशोंमें होता है। अकबरशाहनेभी उसी मेलेकी स्थापना भारतवर्षमेंकी थी, उसका एक स्त्री विभाग था। उसमे प्रदर्शनी होती थी, प्रदर्शनीमें अच्छी अच्छी चीजें बाहरसे आती थीं। उस प्रदर्शनीमें बेचनेवाली स्त्रियां रहती थीं और खरीदनेवालीभी स्त्रियांही होती थीं। हिन्दू, मुसलमान दोनों जातियोंकी बड़ी बड़ी प्रतिष्ठित स्त्रियां वहां आती थीं, बेगमोंके यहांसे खास खास स्त्रियोंको निमन्त्रणभी भेजा जाता था। बाहरवाले इस मेलेके भीतरी रहस्य कुछभी नहीं जानते थे। पर बादशाहका अभिप्राय इस विषयमें कुछ औरही था। वह खुद उस स्त्री विभागमें स्त्रीवेश धरकर जाता था, उसकी ओरसे कुट्टनियां नियत थीं जो कुलवधुओंको बादशाहके पास पहुंचाया करती थीं।

पृथिवीराजकी स्त्री कोभी उस मेलेका निमन्त्रण मिला, ये भी गयीं। इन्होंने मेला देखा, वहीं इन्हें एक स्त्री मिली, वह मेलेकी दर्शनीय वस्तुओंको दिखाने केलिए इनके साथ साथ चली। इधर उधर घुमाकर यह पृथिवीराजकी महारानोको एक कमरेमें ले गयी। वहां स्वयं अकबरशाह बैठे थे। पृथिवीराजकी रानीको देखतेही अकबरशाह उन्मत्तके समान दौड़े, प्रेमकी बातें करने लगे। इसी समय एक प्रचण्ड हूंकारने अकबरशाहको चैतन्य कर दिया। अकबरने मोतियोंकी माला दिखायी, नौलखा हार दिखाया, और भी बेशकीमत जवाहिर जड़े गहने दिखाये, पर पृथिवीराजकी महारानीने कुछभी नहीं देखा, उस समय उनकी दृष्टि इन सबसेभी अधिक दामी, इन सबसेभी अधिक सुन्दर एक वस्तु देख रही थी, जिस वस्तुका नाम है सतीत्व। अकबरने देखा, इन प्रलोभनोंसे काम नहीं चलता, वह आगे बढ़ा, हाथ बढ़ानाही चाहता था कि उसे नीचे आना पड़ा। अकबरशाह जमीन पर पड़े हैं और उनके कलेजे पर एक राजपूत सिंहिनी पैर दिये खड़ी है। सिंहिनीके हाथमें कटार चमक रही है।

अकबरने क्षमा मांगी, अपनी इस बुरी आदतको सदाकेलिए छोड़ देनेकी उन्होंने शपथ की। तब उनके प्राण बचे।

अकबरने उस दिन सीखा कि बगला-भगतोंकी दशा क्या होती है! उस दिन उन्होंने देखा कि मुंहमें राम बगलमें छूरीवाली नीति पर चलनेवालोंकी क्या दशा होती है! इन सब बातोंको बतलानेवाली थी एक भारतीय अबला, जिसके सामने स्वर्गके राज्यके मूल्यसेभी बढ़कर सतीत्वका मूल्य है।

(३)

बुन्देलखण्डमें महोबा एक राज्य था। महारानी दुर्गावती उसी महोबाराज्य की राजकुमारी थीं। इनकी वीरता भी प्रसिद्ध है, इन्होंने अपनी स्वाधीनताकी रक्षा के लिए दिल्ली के बादशाह अकबरशाह की सेनाका सामना किया। इन्होंने स्वाधीनताका मूल्य समझा था, इससे इन्होंने अपने प्राण खुशीसे दे दिये, पर स्वाधीनता नहीं दी।

बुन्देलखण्डमें गढ़मण्डल नामका एक राज्य था, वहांके राजाका नाम दलपतिशाह था। दलपतिशाह वीर और तेजस्वी राजा थे। दलपतिशाह की वीरता तेजस्विता आदि गुण दुर्गावतीने सुने थे, अतएव दुर्गावती की इच्छा हुई कि मेरा ब्याह यदि दलपतिशाहसे हो तो अच्छा हो। पर इसके लिए उपाय क्या है? पिता यदि यह सम्बन्ध चाहें तब न! पर पितासे कहे कौन? दुर्गावती तो कह नहीं सकती।

दुर्गावतीने जिस प्रकार दलपतिशाहके गुण सुने थे उसी प्रकार दलपतिशाहके कानोंतक भी दुर्गावती की प्रशंसा पहुंची थी। दलपतिशाहने महोबेके महाराजके यहां अपना पुरोहित भेजकर दुर्गावतीसे अपने ब्याहका प्रस्ताव किया। महोबेके राजा इस प्रस्तावसे प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने दलपतिशाहके पुरोहितसे कहा—गढ़मंडल राज्यकुल हमसे नीच है, नीचकुलमें हम अपनी कन्या नहीं दे सकते। पुरोहितने यहबात दलपतिशाहसे आकर कहदी। इसबातके सुननेसे दलपतिशाह को बड़ा क्रोध आया उन्होंने अपनी सेना लेकर महोबेके राज्य पर चढ़ाई

की। दोनों राज्योंमें युद्ध हुआ। महोबेके राजा परास्त हुए और उन्होंने अपनी कन्या दुर्गावतीका ब्याह दलपतिशाहसे कर दिया। दुर्गावतीका मनोरथ पूरा हुआ।

ब्याहके पश्चात् राजा दलपति चारवर्षतक जीवित रहे, इस छोटी अवधिमें इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम कुमार वीरनारायण रखा गया था। चौथेवर्ष दलपतिशाहका स्वर्गवास हुआ। पतिके स्वर्गवास होने पर दुर्गावतीने अपने पुत्रकी ओर देखा, पतिके साथ देनेकी अपेक्षा पुत्र की देख-रेख करनेको इन्होंने प्रधान और आवश्यक समझा, ये अपने पुत्र को राजकाज की शिक्षा देनेलगीं और स्वयं राज्यका शासन करने लगीं। इस प्रकार इनके पन्द्रहवर्ष बीत गये। इस समय दिल्लीके बादशाह अकबर थे, इन्होंने अपनी मृदुलनीतिसे राजपूतानेके राजाओंको अपना सहायक बना लिया था, और उनकी तथा कतिपय मुसलमान वीरोंकी सहायतासे ये अपना राज्यविस्तार समस्तभारतमें कर रहे थे। गढ़मण्डलका राज्य कुछ बहुत बड़ा नहीं था। पर वह एक छोटा सुखसमृद्धिपूर्ण स्वाधीन राज्य था। आज तक इस राज्यने किसी की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। आज तक इसके वीरदर्पमें धब्बा नहीं लगा था। अकबरके सेनापति आसफखांकी दृष्टि गढ़मण्डल राज्यपर पड़ी, सेना लेकर वे इस पर चढ़ दौड़े। गढ़मण्डलराज्य एक छोटा सा राज्य था यह मैं कह चुका हूं, उसकी सेनाभी बहुत बड़ी नहीं थी, जो वीर थे भी वे नष्ट हो चुके थे, ऐसी दशामें एक प्रबल बादशाहकी चढ़ाईका सामना वह राज्य कैसे कर सकता ? जो हो दुर्गावतीने निश्चय किया कि

स्वाधीनताको योंही नहीं जाने देना चाहिए! उसकी रक्षाकेलिए पूरा प्रयत्न होना चाहिए! स्वाधीनता पर अपने प्राणोंको भी निछावर कर देना चाहिए! रानी दुर्गावतीने किया भी यही। वे स्वयं वीरवेशसे सज्जित होकर रणक्षेत्रमें उपस्थित हुईं। उनके पुत्रने उनका साथ दिया। शत्रुसेनाने सामने साक्षात् भगवती दुर्गाका दर्शन किया। दुर्गावतीने अपने सैनिकोंको संबोधित करके कहा—

वीरो, इस राज्यके निवासियोंके सामने एक प्रश्न उपस्थित है, वह प्रश्न है स्वाधीनताकी रक्षाका। स्वाधीनताकी रक्षा प्राणसे भी बढ़ कर भारतीयोंको प्रिय है। राजपूतानेके वीरोंकी ओर देखो, उन लोगोंने खुशीसे अपने प्राण दे दिये, पर अपनी स्वाधीनता नहीं दी। अपने जीतेजी उन लोगोंने स्वाधीनताकी रक्षा की। उनलोगोंको स्वाधीनता की रक्षाकेलिए अपने प्राण गंवाने पड़े, पर मालूम है, इस प्राण देनेके बदले उनको क्या मिला है? उन्हें मिली है स्वाधीनता! उन्हें मिला है यश! आज उनके यशकी पताका स्वर्गमें फहरा रही है! उनकी वीरताकी गाथा देवाङ्गनाएं गा रही हैं! क्या यह कम लाभ है? इस लाभको जो कम समझते हों उनसे मेरा निवेदन है कि वे अपने प्राणोंकी रक्षा करें! वे अपनेलिए ऐसा रक्षित स्थान ढूंढ़ें जहां यमराजके दूत भी न जा सकें! जहां बुढ़ापा भी न पहुंच सके! जहां कोई रोगभी न पहुंच सके! मैं खुशीसे उन्हें आज्ञा देती हूं। पर जिनका विश्वास इसके प्रतिकूल है, जिन्हें वैसे स्थान मालूम नहीं हैं जहां मृत्यु न पहुंच सके. उन्हें मेरे साथ चलना चाहिए! आज मैं इस देशको स्वाधीनताकी रक्षाकेलिए युद्धक्षेत्रमें जा रही हूं आज मैं अकबरके

सेनाका सामना करूंगी ! मैं जानती हूं—यह काम कठिन है, पर यदि मैं युद्धमें न जाऊं, यदि मैं वीरतापूर्वक शत्रुका सामना न करूं, तो इससे भी कठिन समय मुझको देखना पड़ेगा ! वीरो मैंने अपनी इन्हीं आंखोंसे पतिकी मृत्यु देखी है, अपने इन्हीं हाथों से पतिकी चिता सजायी है, इन कठिन समयोंको मैंने देखा है, पर युद्ध न करनेका परिणाम इससे भी कठिन होगा ! मेरी आंखें अपने देशको पराधीन नहीं देख सकतीं। मेरे हाथ शत्रुओंके सलाम केलिए नहीं उठ सकते। इसलिए मैं युद्धमें जा रही हूं ! मैं देशको स्वाधीन बनाये रखनेका प्रयत्न करूंगी ! यदि भगवान् की कृपा होगी तो देश स्वाधीन होगा, नहीं तो युद्धक्षेत्रमें प्राण देकर स्वर्ग राज्य पाऊंगी ! अब आपलोग शीघ्रही अपना अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लें !

महारानीकी जयध्वनिसे सैनिकोंने अपनी सम्मति जनायी। वे मुसलमानसेना पर टूट पड़े। मुगलसेना क्षत्रिय वीरोंके आक्रमण न सह सकी, उसने मैदान छोड़ दिया। थोड़ी देरके बाद पुनः मुगलसेना एकत्रित हुई और रानीकी सेनाका उसने सामना किया। रानीकी सेनाने पुनः वीरतापूर्वक सामना किया। पुनः इस सेनाने अपनी वीरता दिखायी, पुनः इन लोगोंने स्वाधीनताकी रक्षाके लिए प्राणपणसे उद्योग किया। खूब युद्ध हुआ, मुगलसेना हताश हो गयी। उसने मैदान छोड़ दिया। रानीने अपनी सेनाको विश्राम करनेकी आज्ञा दी।

रानीने अपने सैनिकोंसे कहा, वीरो, यदि तुम लोगोंने विश्राम कर लिया हो तो चलो पुनः मुगलसेना पर हमलोग चढ़

चलें। तुमलोगोंकी वीरता देखकर मुगलसेना हताश हो चुकी है, मेरा विश्वास है कि इस वारके तुम्हारे आक्रमणसे वह घबड़ा जायगी और इस देशको छोड़कर भाग जायगी। सैनिक दिनके भयानक युद्धसे थक चुके थे, उनलोगोंने रातभर विश्राम करने की प्रार्थना की। रानीने सैनिकोंकी प्रार्थना स्वीकार की, और कहा—वीरो! सावधान रहना, यदि रातको शत्रुओंका अकस्मात् आक्रमण हुआ तो उसका उत्तर देने केलिए तैयार रहना; नहीं तो किया कराया सब मिट्टी में मिल जायगा!

रानीका सोचा सच निकला। रातको मुगलकी सेनाने रानीकी सेना पर आक्रमण किया। पर रानीकी सेना सजग थी, इसलिए मुगल सेनाको मुंह की खाना पड़ी, उसे हताश होकर लौटना पड़ा। इस युद्धमें मुगलोंकी बड़ी हानि हुई!

रात बीत गयी, प्रातःकाल हुआ। दिल्ली से सहायता आ पहुंची। तोपें आ पहुंचीं। थकी हुई महारानीकी सेनाकेलिए इस नयी सेनाका सामना करना कठिन हुआ। पर महारानीकी सेनाने इसका भी सामना किया। तोपोंका जवाब तलवार से नहीं दिया जा सकता। रानीकी सेना तलवार चला रही थी, और बादशाही सेना तोप। बादशाही सेनाके इस कृत्य पर विचार करनेसे क्या होगा? लाभही क्या है? जब तक बना रानीने अपनी सेनाके साथ बादशाही सेनाका सामना किया, वे बड़ी वीरतासे लड़ती रहीं। इसी समय रानीकी सेनामें हाहाकार सुनायी पड़ा। उन्होंने देखा कि राजकुमार घायल होकर जमीन पर गिर पड़े रानीने राजकुमारको रणक्षेत्रसे हटा ले जानेको

आज्ञा दी और वे स्वयं लड़ने लगीं। रानी भी घायल हो गयी थीं। पर इनका ध्यान अपने घावोंकी ओर नहीं गया। वे योगयुक्त होकर स्वाधीनताकी उपासनामें लगी थीं, उन्हें अपने शरीरका भान नहीं रहा। रानीकी भी सेना नष्ट हो चुकी थी। फीलवानने हाथी हटानेकी आज्ञा कई बार मांगी, पर उसे आज्ञा न मिली। एक क्षत्रिय वीराङ्गना केलिए रणमें पीठ दिखानेसे बढ़ कर अपमान की दूसरी बात नहीं है! महारानी बराबर लड़ती रहीं, जब तक वे असमर्थ न हो गयीं, अन्तमें जब महारानीने देखा कि अब शक्ति नहीं रह गयी, तब उन्होंने कटारसे स्वयं अपना कलेजा छेद कर प्राण त्याग किया!

आज कोई नहीं रहा, दुःख उठाने केलिए न तो हारनेवाले मौजूद हैं और न खुशियां मनाने केलिए जीतनेही वाले मौजूद हैं। दोनोंही नहीं हैं। एकने अपनी स्वाधीनताकी रक्षाकेलिए रणक्षेत्रमें अपने प्राणोंका विसर्जन किया, दूसरेने दुर्बलोंकी स्वाधीनता हरण करके तलफ तलफ कर प्राण दिये। कोई भी चिरस्थायी न रहा, हां, चिरस्थायी है एक वीरता, एक का स्वाधीनता प्रेम, एक का वीरत्व, और दूसरेकी क्रूरता दूसरेका दुर्बलको सतानेका उत्साह! इनमें अन्तर बतलाया नहीं जा सकता, वह समझा जा सकता है!

(५)

सरदारबाई राजा क्षेमराजकी कन्या थीं। राजा क्षेमराज कल्याणवंशी क्षत्रिय थे, और गुजराज प्रान्तके पाटनराज्यके पास एक छोटे राज्यमें रहते थे। इनकी रियासत बहुतही छोटी थी।

पर ये लोग स्वाधीन थे। मुसलमानोंका दौर दौरा उस समय भारतमें हो चुका था, पर ये लोग छोटे समझकर या किसी कारणसे छोड़ दिये गये थे। इनकी स्वाधीनता नष्ट करनेका किसीने अभीतक खयाल भी नहीं किया था।

पाटनराज्यमें मुसलमानी झंडा फहरा रहा था। रहमत खां नामक एक सूबेदार वहांका शासन करता था। रहमत खां कहीं जा रहा था, एक दिनके लिए वह खेमराजका अतिथि बना। वहां उसने कहीं बागमें खेमराजकी कन्या सरदारबाईको देख लिया। सरदारबाईका सौन्दर्य देख कर वह पागल हो गया। उसने बड़ाभारी मनसूबा बांधा। सरदारबाई से ब्याह करनेकी उसने इच्छाकी। इस इच्छाकी पूर्तिके लिए वह राजा खेमराजके नगरमें ठहर गया। उपाय सोचने लगा। उसने राजा खेमराजके पुत्रसे मैत्री की। खेमराजका पुत्र बेढंगा था। उसे कुछ ज्ञान नहीं था। उसने रहमत खां के यहां उठना बैठना प्रारम्भ कर दिया। रहमत खां उसकी प्रसन्नताके लिए तरह तरहके उपाय करने लगा। बहुत शीघ्र रहमत खां ने खेमराज के पुत्र मूलराजको अपने फन्देमें फांस लिया। एक दिन ये दोनों जूआ खेलने लगे। रहमत खां जीतने लगा, और मूलराज हारने लगा। अन्तमें जब मूलराजके पास कुछभी न रह गया, तब रहमत खां ने उससे अपनी बहिन को दाव पर रखनेको कहा, और उसने कहा, यदि तुम जीत जाओगे, तो उसरका इलाका मैं तुम्हें दे दूंगा। मूलराज उसके कहने में आगया। पर जीत रही रहमत खां की। मूलराज घर लौटा। अब उसे मालूम हुआ कि उसने कितना बड़ा अनर्थ

कर डाला है। पर अब मालूम होनेसे होताही क्या है? जो होना था सो हो गया। घर आकर उसने नींद आनेका बड़ा प्रयत्न किया, पर नींद कहां, अपराधियोंका साथ निद्रादेवी भी छोड़ देती हैं। वह छटपटाने लगा। उसकी दुर्दशा देख कर उसकी स्त्रीने इसका कारण पूछा, उसने कारण बतला दिया। इस बातको सुनकर उसकी स्त्री भी बड़ी व्याकुल हुई, पतिकी नादानी समझ कर वह मनही मन चुप हो रही।

प्रातः काल हुआ, राजा क्षेमराजने सुनाकि सूबेदार रहमत खां के सिपाही पालकी ले आये हैं, और राजकुमार मूलराजकी बहिनको ले जाना चाहते हैं, क्योंकि राजकुमारने जूएमें अपनी बहिन हारी है। इस बात को सुनकर सभी चकित हो गये। राजकुमार अपनी बहिन को दावपर रखने वाले होते कौन हैं? उन को अधिकार क्या? राजाने कहा, सूबेदार से कहना, राजकुमार को कोई अधिकार नहीं कि वह अपनी बहिनको दावपर लगावे। पिताके जीतेहुए बहिनपर भाईका कुछभी अधिकार नहीं होता। रहमत खां की पालकी लौट गयी। सिपाही भी लौट गये। सिपाहियोंने राजा क्षेमराज का कहना सूबेदार साहबसे कह सुनाया। इसबात से सूबेदार साहब नाराज हुए, सख्त नाराज हुए। वे अपनी सूबेदारी पर चले गये और सेना एकत्रित करने लगे।

इन बातोंका क्याफल होगा यह क्षेमराज जान गये थे। पर फलकेलिए क्या किया जाय? क्षेमराज, दुर्बल हैं, और सूबेदार बलवान्; तो क्या क्षेमराज सूबेदारके इशारेपर नाचेंगे? क्या इनकी सेवामें अपनी बेटी औरबहू अर्पणकरेंगे। यहनीचता है सूबेदारकी, जो ऐसीबातोंकेलिये जिदकरता है।

नीचताहो चाहे जोकुछहो, सूबेदारसाहब अपनी सेनालेकर राजाक्षेमराज परचढ़ आये। क्षेमराजने सामना किया, उनकेसैनिक जीखोलकर लड़े, स्त्रियांतक लड़ीं। परदिल्लीकी बादशाहोके सूबेदारका वे सामना न कर सके। अन्तमें राजा, रानी, सरदारबाई और इस झगड़ेकी जड़मूलराज ये चारों पकड़े गये।

विजयीसूबेदार कैदियोंको लेकर पाटन आये। राजकुमार बेचारा व्यर्थहीसंकटमें फंसाथा, वहसुखी जीव था, सुखचाहता था, उसेसंकटोंसे क्या मतलब? रहमतखांकी आज्ञासे वह मुसलमान होगया। राजा, रानी और सरदारबाई, तीनों अलग अलग कैद कियेगये। पाटन पहुंचकर सूबेदारने सरदारबाई के यहां संवाद भेजाकि मैं आजरातको तुम्हारे यहां आऊंगा। सरदारबाईने कुछ उत्तर नहीं दिया, वह चुपहो रहीं, यथासमय सूबेदार साहब आये। उन्होंने सरदारबाईको प्रसन्न पाया। वह सूबेदारके स्वागतकेलिये तैयार थीं, इसबातसे सूबेदार बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने समझा कि सरदार केवल सुन्दरी ही नहीं हैं किन्तु वह गुणवती और बुद्धिमती भी है। वह जाकर बैठगया और बैठतेही प्याला देनेकी उसने आज्ञादी। सरदारबाई इस ढंगसे प्याला देनेलगीं कि सूबेदारकी उत्कण्ठा प्यालेपर बढ़ने लगी, थोड़ीही देरमें वह बेसुध हो गया।

मौका देखकर सरदारबाईने अपना वेश बदला और वह पहरेदारोंकी आंख बचाकर वहांसे निकल गयी। पाटनसे बड़ी दूर जानेपर उसे एक योगीका आश्रम मिला, वहीं वह योगिनी वेशमें रहने लगी। वहां रहते कुछ दिन बीत गये, एक दिन चन्द्रावतीके

राजकुमार वीर सिंह उस आश्रममें पहुंचे। सरदारबाईसे इनका पहलेका परिचय था, पर राजकुमारने सरदारबाईको योगिनीके वेशमें पहचाना नहीं। सरदारबाई पहचान गयी थी। उसने अपनी कथा राजकुमारको सुनाई। मैं अपनी सेना लेकर पाटन पर चढ़ाई करता हूं, पाटनके सूबेदारको अभी दण्डदेता हूं, तुमचाहो मेरे साथ चलसकती हो। सरदारबाईने राजकुमारके साथ जाना पसन्द नहीं किया। उसने कहा, आप अपनी सेना लेकर आइए, मैं रास्तेमें मिलूंगी, पाटनकी चढ़ाईमें मैं आपके साथ रहूंगी। राजकुमारने सरदारबाईकी बातें मानलीं। वह अपनी राजधानीकी ओर चला गया।

सूबेदारका नशा सबेरे टूटा, तब उसने जानाकि सरदार भाग गयी। उसने सरदारको ढूंढनेके लिए चारों ओर आदमी भेजे, बड़े बड़े पारितोषिक देनेकी घोषणा की। एक और बात हुई, सरदारबाईके निकल भागनेसे वह हिन्दुओं पर बहुत चिढ़ गया, खासकर सरदारबाईके सम्बन्धियोंसे, वह सबको मुसलमान बनाने लगा। राजा क्षेमराज और उनकी रानीको उसने मुसलमान बनने के लिए बहुत सताया, पर उनलोगोंने साफ इन्कार कर दिया। सूबेदारने उनको कहा—समझ बूझ लो, नहींतो फांसी देदी जायगी।

चन्द्रावलीके राजकुमारके जाने पर सरदारबाई भी चली, सूबेदारके आदमी सरदारको ढूंढनेके लिए चारों ओर फैले थे, उनलोगोंमें से कुछ सरदारको मिले। उनलोगोंने सरदारको पहचान लिया। फिर विपत्का सामना करना पड़ा, सरदार चुपचाप खड़ी रही, सूबेदारके आदमियोंने उसे कैद कर लिया और एक पिंजड़ेमें बन्द कर तथा पिंजड़ा बैलगाड़ी में रखवाकर वे ले चले।

मनुष्यके जीवनमें कैसी विलक्षण विलक्षण घटनाएं होती हैं, जिनके कारणोंके विषयमें कुछ निश्चय नहीं किया जासकता। सरदारबाई पाटन पर चढ़ाई करनेकी इच्छा रखनेवाले राजकुमार वीरसिंहकी सहायताके लिए चली थी। पर बीचहीमें वह कैदहो गयी। देखें, आगे क्या होता है? सूबेदारके सिपाहियोंने सरदारबाई को पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। अब उनलोगों में इसबात का विचार होने लगा—कौन कितने पारितोषिका हकदार है? कोई कहता था, मैंने सबसे पहले पहचाना, कोई कहता था, मैंने सबसे पहले देखा, कोई कहता था, इसको देखनेसे मेरे मनमें सबसे पहले सन्देह उत्पन्न हुआ था। बढ़ते बढ़ते बात बढ़ गयी।। तलवारें खिंच गयीं, फल यह हुआ कि देखतेही देखते परितोषिक पानेके सभी हकदार वहां ढेर हो गये। अब बच रहे दो बैल, एक गाड़ीवान और पिंजड़ेमें सरदारबाई। इस घटनासे गाड़ीवान बहुत प्रसन्न हुआ, वह समझता था कि अब सब पारितोषिक मुझको ही मिलेगा। उस गरीबको क्या मालूम कि आगे क्या होनेवाला है? गाड़ी जंगलसे होकर जारही थी, थोड़ीदूर गाड़ी और आगे बढ़ी, जंगलमेंसे एक बाघ निकला और उसने गाड़ीवान और बैलोंको खतम किया। सरदारबाई पिंजड़ेमें थी पिंजड़ा उलटकर दूर चला गया, सरदारको चोट आयी सही, पर उसके प्राण बच गये। इस घटनाको क्या कहें? यह घटना घटी थी सरदारको दुःख पहुंचाने के लिए, पर हुआ इससे सरदार को लाभ!

उस रास्तेसे आने जानेवालोंने सरदार को पिंजड़ेमें बन्द देखा, और पास पड़ी हुई लोथें भी देखीं। उनलोगोंने सरदारको

पिंजड़ेसे निकाला और पासहीके एक देवी मन्दिरके पुजारीके पास पहुंचा दिया। सरदार पुजारी की रक्षामें रहने लगी, इसने अपना योगिनीका वेश बदल दिया, अब यह पुरुष वेशमें रहने लगी। वीरसिंह अपनी सेना लेकर आये, मन्दिरमें उन्होंने सरदारका पता लगाया। दोनों मिले और सेनाके साथ पाटनकी ओर चले।

रास्ते में इनलोगोंने सुना कि आज राजा क्षेमराज और उनकी रानीको फांसी दी जायगी। अपराध यह था कि उन लोगोंने सूबेदार साहबके कहनेसे मुसलमानी धर्म ग्रहण नहीं किया। सरदार और वीरसिंह इस खबरके सुनतेही घबड़ा गये, उनलोगोंने सेना को शीघ्र आनेकी आज्ञा दी, और वे स्वयं आगे बढ़े। यथासमय ये पाटन पहुंच गये। राजा क्षेमराज और उनकी रानीके लिए फांसीकी सब तैयारी हो चुकी थी। दो जल्लाद तलवार लिये खड़े थे, और भी बड़ी भीड़ एकट्ठी थी, स्वयं सूबेदार साहब इस तमाशेको देखनेके लिये आये हुए थे। सूबेदारने हुक्म दिया, जल्लादों ने तलवार उठायी, उसी समय दो राजपूत सवार आये और उनलोगोंने दोनों जल्लादोंके सिर उतार डाले। सभी लोग अकचका गये। दोनों वीर लगे मुसलमानोंको काटने। इसी समय उनकी सेनाभी आपहुंची, मुसलमानी सेना भी धीरे धीरे आने लगी, लड़ाई छिड़ गयी, राजपूत जी खोलकर लड़ने लगे, मुसलमान जमीन पर गिरने लगे। सूबेदार साहब अबतक धीरतापूर्वक खड़े थे। बुरे ढंग देख कर वे भागनाही चाहते थे कि उनका सिर भी धड़ामसे जमीन पर गिर पड़ा। मुसलमानी सेना तितरबितर हो गयी। पाटनके किले पर राजकुमार वीर सिंहका झण्डा

फहराने लगा। राजा क्षेमराज और उनकी रानीके प्राण बचे। शत्रुओंका नाश हुआ, हिन्दू धर्मकी रक्षा हुई, एक हिन्दू कुलाङ्गना की रक्षा हुई।

सब जगह शान्ति हुई। एक दिन राजा क्षेमराजने वीरसिंह और सरदारबाईको बुलाया। राजा क्षेमराजने कहा—राजकुमार! तुम्हारे उपकारोंका बदला मैं क्या दे सकता हूं! तुमने हमारे अमूल्यधन धर्मकी रक्षाकी, ऐसे उपकारोंके लिये हमारे पास पारितोषिक नहीं है। केवल यह कन्या है, इसकी भी तुमनेही रक्षाकी है, मैं चाहता हूं कि अब तुम्हीं इसको अपने चरणोंमें स्थान दो। वीरसिंहने सिरझुका कर राजा क्षेमराजकी आज्ञा स्वीकार की। सरदारने लज्जासे सिर झुका लिया, राजा और रानी की आंखें आनन्दाश्रुसे भर आयीं। सभीने मिलकर मनही मन उस अचिंत्य शक्तिको धन्यवाद दिया जिसकी इच्छासे आज यह शुभ अवसर देखनेको मिला!

राजा और रानी अपने राज्य पर गये। पाटन और चन्द्रावती का राज्य वीरसिंह करने लगे। आनन्दसे इनके दिन कटने लगे, सरदारबाई भी बहुत प्रसन्न रहने लगी।

पर इनके भाग्यमें यह सुख बहुत दिनों तक के लिये नहीं था; रहमत खां सूबेदार नहीं रहा तो क्या हुआ? वह तो अभी वर्तमान ही है, जिसका सूबेदार रहमत खां था। भला, वह इन बातोंको कैसे सह सकता है? उसकी दृष्टिमें ये बातें गुस्ताखी हैं, इतने बड़े बादशाहके सूबेदारको राजा क्षेमराजने लड़की नहीं दी, क्या हुआ वह हिन्दू था और सूबेदार मुसलमान, सूबेदार तो था, हमारा

आदमी तो था, हमारे आदमीका हुक्म नहीं माना गया। इससे बढ़ कर भी गुस्ताखी हो सकती है? बादशाहने खुशरू खां को सेनापति बना कर एक सेना भेजदी, और उसे हिदायत करदी कि वीरसिंह आदि बागियोंको खूब सजा दी जाय।

बादशाही सेना पाटन आयी, वीरसिंहने उसका अच्छा स्वागत किया, वीरसिंहकी वीरताने बादशाही सेनाको अच्छा पाठ पढ़ाया। वीरसिंहने बड़ी वीरता दिखायी। पर अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित, असंख्य बादशाही सेनाका सामना करना वीरसिंह केलिए कठिन था। वीरसिंह रणमें मारे गये। राजपूत सेनाका बल कम हुआ, पर वह लड़ती रही, सरदारको अपने पतिके मारेजानेकी खबर लगी, उसने अपना छोटा बच्चा सासके चरणोंमें रखदिया। उसने साससे कहा, माता, आप इसकी रक्षाकरें, यह आपहीका पुत्र है, अब मैं अपना कर्त्तव्य पालन करने जा रही हूं, उसने जनाने वस्त्र उतार दिये। वीरोंके समान वेश बनाया। अस्त्रशस्त्र लेकर वह घोड़े पर सवार हुई और मैदानकी ओर चली, पहुंचते ही उसने अपने वीरोंको बढ़ावा दिया, उनका धीमा पड़ता हुआ उत्साह पुनः सजीवहो उठा, वीर लड़ने लगे। किलेके बुर्जों पर चढ़कर वे शत्रु संहार करने लगे। महारानीने किलेका फाटकबन्द करदेनेकी आज्ञादी। किलेका फाटक बन्द हुआ। महारानी सरदारबाई और उसके साथ सौ और वीर बाहरही रह गये। ये लोग वहींसे शत्रुका सामना करने लगे। शत्रुओंने अपने सामने देवीको लड़ते देखा। वे प्रसन्नता पूर्वक देवीकी तलवारसे प्राणविसर्जन करने लगे। बादशाही सेना बहुत छीजी, फिरभी वह सरदारबाईकी सेनासे चौगुनी

थी, सन्ध्याहुई, मुसलमान अपने शिविरमें गये, किलेका फाटक खुला, सरदारबाई बचे हुए अपने साथियोंके साथ किलेके भीतर गयी। इसने किलेमें रहकर एकमहीने तक शत्रुका सामना किया। पर क्या हो सकता था? सरदारबाईकी सेना एकप्रकारसे किलेमें कैद थी, उसको बाहरसे कोई भी संबन्ध नहीं रह गया था। रसद घटी, सामान घटे, प्राणकैसे बचें? और युद्ध कैसे किया जाय? स्थिति विकट होकर सामने खड़ी हुई, महारानी सरदार-बाईने अपने वीरोंको बुलाकर कहा—वीरो! अब हमलोगोंके लिए दोही मार्ग रह गये हैं। एक मार्ग है स्वर्गका जो युद्धमें प्राणदेनेसे मिलेगा, दूसरा मार्ग है नरकका जो प्राण बचानेकी इच्छासे मुसलमानोंकी दासता स्वीकार करनेसे मिलेगा। बतलाओ, किधर तुमलोग जाना चाहते हो? जिधरतुम्हारे राजा और हमारेपति गये हैं उधर; या जिधर बेहया हमारा भाई गया है उधर? वीरोंने उत्तर दिया, महारानी, राजपूत नरक जाना नहीं चाहते, ये नरक जानेकी इच्छा भी नहीं करते। महारानी सरदारबाईने कहा—तुम लोगोंसे ऐसाही उत्तर पानेकी हमें आशा थी। रात हो गयी थी, सरदार बाई विश्राम करने लगी, वीरगण अपने अस्त्र शस्त्र तैयार करनेमें लग गये।

प्रातःकाल होतेही महारानी केशरियाबाना पहने अपने वीरोंके साथ निकली, किलेका फाटक खोल दिया गया था। वह दृश्य था जिसे देख कलेजा उमड़ आता था। महारानीने अपने वीरोंको वार करनेकी आज्ञा दी, क्षत्रिय वीर सिंह के समान मुसलमानी सेना पर टूट पड़े। एक एकने सैकड़ों शत्रु मार गिराये सरदार

बाई उनके आगे थी, उनका पराक्रम देखनेही लायक था। चारों ओर से शत्रु सेना उन्हें घेरे खड़ी थी, वे बीचमें तीन चार सैनिकों को लेकर शत्रु का संहार कर रही हैं। आज सरदार सरदार हुई है, उसने अकेले समस्त प्रबल शत्रुसेनाको त्रस्तकर रखा है। वह जिधर मुड़ती हैं, उधरही साफ कर देती है। उसके शरीर शत्रु के प्रहारों से जर्जर हो गये हैं, पर उधर उसका ध्यान नहीं, आज उसने शत्रु संहार की प्रतिज्ञा की है, उसके अंगोंसे रुधिरकी धारा बह रही है, वह शत्रुओंका संहार कर रही है। उसके सैनिक समाप्त हो चुके हैं, वह लड़ रही है, मुसलमान सैनिक उसे पकड़ना चाहते हैं, वे आगे बढ़ते हैं उसे पकड़ने केलिए, पर वे पीछे हट आते हैं। सरदारबाईकी वीरता शत्रुओंने देखी और स्वर्गके देवताओंने देखी। उस अनुपम वीरताको देखनेवाला वहां कोई दूसरा नहीं था!

महारानी सरदारबाईके शरीरसे बहुत खून निकल चुका था, उनके कई घाव लग चुके थे, वे घोड़े परही बेहोश हो गयीं, और गिर पड़ीं। अब मुसलमान उनके शरीरको छू सके। होश होने पर उन्हें मालूम हुआ कि वे मुसलमान सेनापति खुशरू के खेमे में एक पलंग पर पड़ी हैं। पासही सेनापतिखुशरू बैठा है। उसने सरदारको होशमें देखकर कहा, महारानी! कुछ चिन्ता नहीं, तुम यदि हमसे ब्याह करनेकी प्रतिज्ञा करो, तो अब भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो सकती है, अब भी तुम जीनेका मजा लूट सकती हो! महारानी बहुतही दुर्बल हो चुकी थीं, उन्होंने कुछ उत्तर न दिया, केवल कमरमें लटकती हुई कटार उन्होंने निकाललो, खुशरू वहांसे चला गया। थोड़ी देरतक महारानी वहीं पड़ी रहीं

पुनः वे वहांसे उठीं, दुर्बलता बहुत बढ़ चुकी थी। किसी प्रकार वे मुसलमानी शिविरसे निकलीं, बहुत दूरतक नहीं जासकी थीं, उनसे आगे नहीं बढ़ा जासका। वे जमीनपर गिरकर मूर्च्छित हो गयीं। मालूम नहीं कब तक वे वहीं मूर्च्छावस्थामें पड़ी थीं। वायुलगने से उनकी मूर्च्छा दूर हुई। उसी रास्ते से राज्यका एक चारण जा रहा था, उसने अपनी महारानीको देखा, पास आया, महारानी ने उसे देखकर पहचाना, महारानी बोलीं—थोड़ा पानी लेकर मेरा शरीर धोदो, पापी मुसलमान के छूनेसे यह अपवित्र हो गया है, चारणने अपनी महारानीकी आज्ञाका पालन किया। रानीने कहा - मैं प्राण त्यागने के योग्य हो गयी हूं। यह शरीर अशुद्ध हो गया था, इसी कारण अबतक मैंने प्राण नहीं छोड़े। अब मेरा शरीर पवित्र हुआ, अब मेरे प्राण सुखसे निकलेंगे। तुमलोगों का कल्याण हो! राजकुल की रक्षाका भार अब मैं तुमलोगोंको सौंपती हूं। धर्म पर दृढ़ रहना। सांसारिक सुखों की अपेक्षा धर्मका राज्य महान् है, धर्मका मूल्य अधिक है। अब बोलने की शक्ति नहीं! रानी के विजयी जीवन का अन्त हुआ!

लोग कहेंगे-रानी की हार हुई। पर बात यह नहीं है, यह बात झूठी है। सुनिए, महारानी ने युद्ध किस लिये किया था? क्या राज्य के लिये? नहीं, कभी नहीं। हिन्दू स्त्रियां लालची नहीं होतीं। वे दूसरेका धन हरण करना, दूसरेके धनसे धनवती होना नहीं चाहतीं। वे अपने धर्मकी रक्षा करना चाहती हैं, उनका प्रधान धर्म है सतीत्व, सतीत्वकी रक्षाके लिये वे सब कुछ कर सकती हैं। भारतीय स्त्रियां सब खो सकती हैं, पर सतीत्व नहीं।

जब उनके सतीत्व पर संकट उपस्थित होता है तब अपनेमें नहीं रहतीं। वे उस समय तलवार पकड़ती हैं, मारती हैं, और खुद मर जाती हैं! कुमारी सरदारबाईने युद्ध किया था अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये, अपने सतीत्व पर आंख डालने वाले मुसलमान सेनापतिको दण्ड देनेके लिये, महारानी सरदारबाईने युद्ध किया था अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये। महारानीका उद्देश्य था अपने सतीत्वकी रक्षा। उसमें वे सफल हुईं, वीरता पूर्वक उन्होंने शत्रुओंका संहार किया। और अपने सतीत्वके साथ प्राण त्याग किये। कहिये, महारानी विजयिनी हुईं कि नहीं?

भक्ति।

आज भारत की स्त्रियां पराधीन समझी जाती हैं और सचमुच वे पराधीन हैं भी, लोग कहते हैं भारतकी स्त्रियां पराधीन हैं, क्योंकि वे पर्दे में रखीजाती हैं। मैं भी कहता हूं कि भारतकी स्त्रियां पराधीन हैं, पर इसलिए नहीं कि वे पर्दे में रहती हैं, किन्तु इसलिए कि उन्हें अपनी शक्तियोंको विकसित करनेका अवसर नहीं मिलता। आज भारतीय स्त्रियों के जीवन का लक्ष्य निश्चित होगया है, और वह थोड़े दिनोंतक कुमारी रहकर पिताके घरमें रहना, पुनः विवाहिता होकर पतिके घर रहना, और सबके पीछे विधवा होकर परिवारकी दासी बनकर रहना, बात बातपर ठुकरायी जाना। उन्हें भगवच्चिन्तनका अवसर नहीं, शास्त्र, पुराण आदि सुननेकी शक्ति नहीं, पढ़नेकी बात कौन कहे? उनमें बल नहीं, बुद्धि नहीं, शक्ति नहीं, ज्ञान नहीं, और न वे इनके पात्र समझी जाती हैं। यह गहरी पराधीनता है, इससे समूची जातिका नाश हो रहा है, पर कोई ध्यान नहीं देता, कोई इनबातों पर विचार नहीं करता। इधर कुछ दिनोंसे भारतमें स्त्रीशिक्षाकी पुकार सुनायी पड़ती है, जहां तहां स्त्रीशिक्षाकी व्यवस्था हो भी रही है, पर हमलोगों को इनबातों को सदा स्मरण रखना चाहिए कि इन रीडरोंके पढ़नेसे, इन भूगोल, इतिहास की पुस्तकें रटने से, अथवा पाटीगणित के

सवाल हल करनेसे अथवा परीक्षा पास करनेसे हमारी स्त्रीशिक्षा पूरी नहीं होती। यह शिक्षा पश्चिम के ढंगकी शिक्षा है, जहां तहां इसके कुफल भी प्रकट होने लगे हैं, जिसका परिणाम स्त्रीशिक्षा के पक्षमें बहुत बुरा होगा, इसमें सन्देह नहीं। स्त्रियोंको पढ़ाओ, पर उनका पढ़ना अधूरा मत रहने दो; अधूरी शिक्षा भयानक होती है, उससे लाभ नहीं होता, हानि अधिक होती है। स्त्रियों और पुरुषोंकी शिक्षा बराबर होनी चाहिए। पुरुषोंको शिक्षाकी बुराइयां, उसका बेढंगापन थोड़े दिनोंके लिए सहा भी जा सकता है, पर स्त्री-शिक्षाकी ओर एक क्षणके लिए भी उपेक्षा ठीक नहीं। भारतीय महत्व, भारतीय गौरव, स्त्रियों के अधीन रहा है और आज भी है। विदुषी माता मूर्ख बेटे को पण्डित बना सकती है, पर मूर्ख बेटा स्वयं भी पण्डित नहीं बन सकता, औरों को वह क्या बनावेगा ? अतएव मैं कहता हूं—स्त्रियों को विचार-स्वातन्त्र्य अभी दिया जाना चाहिए, विचार संबन्धी उनकी पराधीनता दूर होनी चाहिए, उनके जीवन के सङ्कुचित लक्ष्यको विशाल बनाना चाहिए। उनकोभी मालूम होना चाहिए कि मैं वह गाय नहीं हूं जो दूधदेनेके लिए गृहस्थोंके यहां पाली जाती हैं; मैं वह मेशीन नहीं हूं जिससे पूंजीवाले लाभ उठाया करते हैं; मैं चेतन प्राणी हूं, मुझमें विचारशक्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, बल है। धर्म, देश, जाति, राजा आदिके प्रति मेराभी कर्तव्य है। मैं दो स्त्रियोंकी जीवन-घटनाएं यहां लिखना चाहता हूं कि पहलेकी स्त्रियोंमें विचार स्वातन्त्र्य था। वे अपने विचारके अनुसार जीवनको गठित कर सकती थीं

भक्ति

(१)

जोधपुर राज्यमें मेड़तानामकी एक छोटी रियासत है। यह रियासत पहले स्वाधीन थी। इसके शासक रत्नसिंहकी कन्याका नाम मीराबाई था। मीराबाई उदयपुरके महाराणा कुम्भसे ब्याही गयी थी।

मीराकी अवस्था जब बहुतही छोटी थी, तभी उसकी माताका देहान्त हो गया। अब मीराकी देखरेख उसके पिता रत्नसिंह करने लगे। मीराकी शिक्षाका उत्तम प्रबन्ध किया गया, उसका लालन पालन उत्तम रीतिसे होने लगा। मीरा पिताके प्रयत्नोंसे योग्यता अर्जन करने लगी।

मीराके हृदयमें बाल्यावस्थामें ही न मालूम किस कारणसे भगवत् प्रेमकी स्थापना हुई। मीरा बड़ी सुन्दरी थी, उसकी वाणी बड़ी मधुर थी, उसके ये दोनों गुण प्रसिद्ध हुए, उसको देखनेके लिए, उसकी मधुरवाणी सुननेके लिए, अनेक राजकुमार तथा राजा उत्कण्ठित हुए। उदयपुरके महाराणा कुम्भने मीराका ब्याह अपने साथ करनेके लिए उसके पितासे कहवाया, राजा रत्नसिंहने यह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। महाराणाका कुल, गुण आदि सभी श्रेष्ठ थे। उनको कन्या न देनेका कोई उचित कारण नहीं था।

यथासमय महाराणा कुम्भके साथ मीराका ब्याह हुआ। महाराणा कुम्भ और मीरा दोनों उदयपुर आये। दोनों प्रेमपूर्वक रहने लगे। महाराणा मीराके धार्मिक कार्योंमें और मीरा महाराणाके राजकाजोंमें योग देने लगी।

मीराका कण्ठ सुरीला था, उसकी वाणी मधुर थी, इन दोनों गुणोंको और उज्ज्वल करने के लिए उसमें कवित्व शक्ति उत्पन्न हुई, वह कविता करने लगी। उसकी कविता मधुर होती थी, उस की कवितामें भगवत्प्रेमका वर्णन होता था। मीराके इस काममें उसके पतिने प्रसन्नतासे योग दिया। दोनों पति, पत्नी काव्यानन्द लेने लगे। मीराने "रागगोविन्द" नामक एक ग्रन्थभी बनाया था। उसमें भगवान्के प्रति हृदयके स्वाभाविक उठे हुए मधुरभाव भरे हुए हैं। मीराके इस गुणका प्रभाव उसके पति पर भी पड़ा। उसका पति महाराणा कुम्भभी कविता करने लगा, उसने भी अपने हृदय में भगवत्प्रेमकी स्थापना की।

मीराके हृदयमें भगवत्प्रेमकी स्थापना बाल्यावस्था में ही हुई थी, यह बात कही जाचुकी है। मीरा बाल्यावस्थासे ही भगवान्के गुणानुवाद करती थी, उसके समय भगवच्चिन्तनमें ही व्यतीत होते थे। वहां वह स्वाधीनता पूर्वक भगवत्प्रेममें मग्न रह सकती थी, स्वाधीनता पूर्वक भगवद् भजन कर सकती थी, भगवद्-गुणानुवाद कर सकती थी। इस प्रकार थोड़ेही दिनोंमें उसके जीवनके ये प्रधान कार्य हो गये थे, पर पतिके घरमें आने पर उसकी वह स्वाधीनता जाती रही। कुछ दिनोंतक तो उसने बड़े कष्टोंसे अपना समय बिताया, पर जीवनका निश्चित लक्ष्य बहुत दिनोंतक भुलाया नहीं जासकता; बहुत दिनों तक अपने जीवनके प्रधान कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मीराने अपना काम पुनः प्रारम्भ किया, उसके प्रबल भगवत्प्रेमने सांसारिक बाधा न मानी भला उस सुखको संसार के किसी दूसरे पदार्थोंमें शान्ति

थोड़ेही मिल सकती है, जिस में भगवान्का प्रेम उत्पन्न हो गया है, जिसने भगवान्की सुन्दर छटा देखी है।

मीराने अपनी इच्छा अपने पतिदेवसे कही, पतिदेवने चित्तौरके राजमहलमें श्रीकृष्णका मन्दिर बनवा दिया। मीरा उस मन्दिरकी पुजारिन बनी। वैष्णव साधु, सन्तोंकी वहां भीड़ एकत्रित होने लगी, वहां भगवद् गुणानुवाद होने लगा, भगवत् कीर्तन होने लगा, मीरा भगवत् प्रेममें मग्न हुई, उसके सामनेसे सांसारिक बन्धन धीरे धीरे हटने लगे। मीराके हृदयका समस्त प्रेम भगवान् के चरणोंमें समर्पित हुआ। मीरा सांसारिक कामोंको भूलने लगी, पतिदेवके कार्योंमें उससे त्रुटि होने लगी। वह दिन दिन भर श्रीकृष्णकी मूर्तिके सामने विमोह होकर बैठी रहती, वहीं उसकी प्रेमात्मक समाधि लग जाती। ऐसी दशामें वह सांसारिक काम करती, पतिदेवको प्रसन्न रखती, यह बात असम्भव है।

संसारके प्रलोभनोंमें फंसा हुआ मनुष्य कभी अपने स्वार्थों की, अपने सुखोंकी हानि नहीं सह सकता। पहले महाराणा कुम्भने मीराका बड़ा आदर किया, उसके रूपकी, उसकी मधुरवाणीकी उस ने पूजाकी, इसका कारण यह था कि वह मीराके रूप और वाणीसे सुख उठाता था, वह इनका उपयोग करता था। पहले उसने मीरा के काव्यकार्यमें भी साथ दिया, इसका कारणभी वहीं था। यहभी उसके सुखकी सामग्री थी। पर जब महाराणाने देखा कि मीराका सौन्दर्य, मीराकी काव्यशक्ति, मीराकी मधुरवाणी आदिका रुख दूसरी ओर है, मीराने अपने इनगुणों को दूसरे की उपासना में लगाया है- वह बड़ा दुःखी हुआ। वह मीरा के समस्त गुणों पर

अपना अधिकार समझता था, अपने को उसका स्वामी समझता था ; इससे वह चाहता था कि मीरा उपासना करे तो मेरी करे, कविता करे तो मेरे गुणोंका उसमें वर्णन करे, उस को गान करना हो तो मुझे प्रसन्न करनेके लिए, मेरे मनोरञ्जनके लिए गावे। यही तो कुल धर्म है, यही तो कुलवती के लक्षण हैं; पर मीरा इन बातों के लिए तैयार न थी, उसने अपने जीवन का लक्ष्य भगवान् का गुणानुवाद, भगवान्की भक्ति निश्चित कर लिया था। वह अब कैसे बदल सकता था ? इससे महाराणाका द्वेष मीरा पर दिनोंदिन बढ़ने लगा। महाराणा मीरा को कष्ट देने लगा। पर मीराने उन कष्टोंकी ओर ध्यान न दिया। मीराने बड़ी धीरता पूर्वक उन कष्टों का सहन किया। महाराणा सांसारिक सुखके लिए व्याकुल था। अतुल ऐश्वर्य, असीम शक्ति ये सब राणाको व्यर्थ मालूम होते थे, राणा कष्ट देकर भी जब मीराकी मनोवृत्तियोंको दमन न कर सके, तब उन्होंने अपना दूसरा ब्याह करना निश्चित किया। महाराणाने मीरा से इस विषयमें संमति मांगी, मीरा इस प्रस्तावसे बहुत प्रसन्न हुई, उसने सम्मति देदी।

उन दिनों झालावाड़की राजकुमारी के रूप की बड़ी प्रसिद्धि थी, महाराणा ने उसी से अपना ब्याह करना चाहा, पर उसका ब्याह मन्दार राजकुमार से निश्चित हो चुका था, राजकुमारी भी उसी राजकुमार पर अनुरक्त थी। महाराणा ने जब यह बात सुनी तब वे चिन्तित हुए, उन्होंने झालावाड़ राजकुमारीको लेनेका विचार पक्का किया। महाराणा उचित समय पर गये और राज

कुमारीको हर लाये। राजकुमारीसे उन्होंने चित्तौड़के महलमें ब्याह किया।

इस ब्याह से महाराणा को सुख हुआ कि नहीं यह बतलाया नहीं जासकता, पर मीरा इस ब्याह से बहुत सुखी हुई। अब उसके साथ महाराणाकी छेड़छाड़ बन्द हुई, अब वह श्रीकृष्णके मन्दिर में दिन रात बिताने लगी। साधु सन्त वहां आने लगे, भगवान् का गुणानुवाद होने लगा। मीराके श्रीकृष्णमन्दिरमें किसी को भी कोई रोक-टोक नहीं थी, सभी वहां जा आ सकता था। मीरा सभी के स्वागत के लिए तैयार रहती थी, मीरा के मन्दिर में जाकर कोई बिना भोजन किये नहीं लौट सकता था। यह मीरा का नित्य नियम था।

एक दिन मन्दार का राजकुमार भी साधुवेशमें मीराके श्रीकृष्ण-मन्दिर में आया। हरिकीर्तन होने लगा, बड़ी रात बीत गयी, भगवान्के शयन का समय उपस्थित हुआ, उस समय मीरा उठी और वह आगत साधु, सन्तोंको भोजन कराने लगी, भगवत्प्रसाद सबको देने लगी, सब लोगों ने भोजन किया, सब ने प्रसाद ग्रहण किया, पर एक साधु ने भोजन न लिया और न प्रसादही लिया, मीराने बहुत आग्रह किया, पर उसने कुछ भी नहीं सुना। भगवत्-प्रसाद लेकर और साधु, सन्त चले गये, पर वह साधु बैठा रहा, सबके जाने पर वह भी जाने के लिए तैयार हुआ, मीरा के यहां से कोई अतिथि बिना भोजन के लौट जाय, यह बात मीरा के लिए बड़ी दुःखदायी थी। मीरा ने उस साधु के चलने के सम

एकबार बड़ी करुणा से भोजन करलेने के लिए कहा वह ठहर गया और बोला, यदि आप मेरी एक बात मानें तो मैं भी आपकी बात माननेके लिए तैयार हूं, मीरा ने कहा—कहिए. उसने सबसे पहले अपना परिचय दिया, उसने कहा, मैं मन्दार राज का राजकुमार हूं, यहां साधु के वेश में आया हूं। साधुवेश मैंने इसलिए बनाया है कि जिससे मैं यहां तक आसकूं। महाराणा के दरबार में आने की आज्ञा सबको नहीं है, पर मीरा का दरबार सबके लिए खुला है, इसीलिए मैंने मीराके दरबारीका वेश बनाया। अपना परिचय देनेके बाद राजकुमारने कहा, कि झालावाड़की राजकुमारी का ब्याह मेरे साथ निश्चित हो चुका था, हमदोनों में परस्पर प्रेम भी था, पर महाराणा जबरदस्ती उसे हर ले आये। महाराणा का सामना करने की शक्ति हममें तो है नहीं, इसलिए हमलोग चुप रहे, कलेजा थाम कर यह अत्याचार देखा। अब मैं एकबार झालावाड़की राजकुमारीको देखना चाहता हूं, कृपाकर आप इसका प्रबन्ध कर दें।

मीरा इस बातको सुनकर चुप हो गयी, यह काम कठिन था, महाराणाके महलमें दूसरे पुरुषका जाना मना है, कोई जाना भी चाहे तो जा नहीं सकता, यदि कोई कोशिश करे जानेकी, तो उसे दण्ड भोगना पड़े, वह दण्ड भी हलका नहीं किन्तु कड़ा। जो महाराणाके महलमें किसी राजपुरुषके जानेमें मदद पहुंचावे वह दण्ड भोगी हो, मीरा इन्हीं बातोंके विचार में पड़ गयी। पर वह प्रतिज्ञा कर चुकी थी। प्रतिज्ञा तोड़ना बड़ा भारी पाप है। मीराने निश्चय किया, महाराणा क्रोध करेंगे, दण्ड देंगे, शरीरको कष्ट देंगे देश

निकाला देंगे अथवा फांसी पर लटका देंगे; पर धर्मपतित होने से आत्माको पापभागी होना होगा, आत्माको दण्डभागी होना पड़ेगा।

मीराने महाराणाका क्रोधभाजन होना पसन्द किया। उसने भीतरके किवाड़ खोल दिये। राजकुमार उसके साथ भीतर गया, मीराने उसे राजकुमारीका कमरा दिखा दिया। राजकुमार आगे बढ़ा, वहां जाकर उसने महाराणा कुम्भ को बैठा देखा। राजकुमार घबड़ाया, वहां से भाग गया।

राजकुमारने भाग कर अपनी रक्षा की। पर मीरा कहां भाग सकती थी? राजकुमारका भी दण्ड मीरा को भोगना पड़ा। महाराणाने भी मीरासे कहा—तुमने भीतरका द्वार खोल कर दूसरे पुरुषको महाराणाके महलमें प्रवेश कराने का अपराध किया है। इसके लिये तुमको देशनिकालेका दण्ड दिया जाता है, मीराने पतिकी आज्ञा मानली और वह इस आज्ञासे बहुत प्रसन्न हुई।

चित्तौड़ सूना हुआ। भक्तिमती मीरा आज चित्तौड़ से निकाल दी गयी है। चित्तौड़वासी मीराके चले जाने से नितान्त दुःखी हुए, महाराणाने भी कुछ दुःखका अनुभव किया। यद्यपि महाराणा मीराबाईसे सन्तुष्ट नहीं रहते थे तथापि मीराबाईका चलाजाना उनको भी अच्छा नहीं लगा। महाराणाकी आज्ञासे मीराबाईको ढूंढनेके लिये चारों ओर आदमी भेजे गये। महाराणाके दूतोंने मीराबाईको देखा। उन लोगोंने मीराबाईको महाराणाकी आज्ञा सुनायी। मीराने कहा—महाराणाकी आज्ञा पालन करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता है। महाराणाकी आज्ञा के पालन करने के लिए ही मैं चित्तौड़

छोड़ कर चली आयी, अब उसकी चित्तौड़ जाने की आज्ञा है तो मैं उसके पालन के लिए भी तैयार हूं।

मीरा चित्तौड़ आयी, मीरा के आने से चित्तौड़ में पुनः भक्ति स्रोत बहने लगा। नगरवासी प्रसन्न हुए, हरिकीर्तन होने लगा; पहले मीरा अपने श्रीकृष्ण के मन्दिर में ही हरिकीर्तन किया करती थी, अब वह नगरकीर्तन करने लगी, उसके कीर्तन में नगरवासी भी शामिल होने लगे, मीराने भक्तिस्रोत बहाकर चित्तौड़वासियों को पवित्र करना प्रारम्भ किया, मीरा की पूजा होने लगी, कोई मीरा को रुपये देता और कोई गहने. लोग अपनी प्रिय वस्तु मीरा के चरणों में अर्पण करने लगे।

संसार में कुछ ऐसे प्रकृति के भी मनुष्य रहते हैं, जिन्हें सब जगह बुराइयां ही दीख पड़ती हैं। वे क्रूर और नीच हैं, पर वे संसार में हैं और वे बड़े धार्मिकों तथा सज्जनों तक को बदनाम कर दिया करते हैं, ऐसे लोगों की दृष्टि मीरा के फैलते हुए यश पर पड़ी। उनलोगों ने मीरा को बदनाम करने का सङ्कल्प किया, वे मीरा की निन्दा करने लगे। महाराणा ने भी उनसे मीरा की निन्दा सुनी, इससे महाराणा बहुत अप्रसन्न हुए, उन्हों ने मीरा से कहवाया कि इस कलङ्क को धोने के लिए तुम्हें नदी में डूब जाना चाहिए। मीरा नदीमें डूब गयी, पर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। उन्हों ने मीरा को डूबने न दिया। भला भगवान् के भक्त अकाल मृत्यु के ग्रास बनें यह क्या भगवान् के लिए नामवरी की बात है? भगवान् ने अपनी शक्ति से मीरा को बचाया, मीरा नदी से निकल कर आगे चली, उसने वृन्दावन जाने का निश्चय कर

लिया, जिन श्रीकृष्ण भगवान्ने उसकी रक्षाकी, उनके दर्शनों के लिए वह वृन्दावन चली।

मीरा राजकुमारी है और महाराणी है, आज वह पैदल एक वस्त्र के साथ वृन्दावन जा रही है। उसको इसका कुछ भी कष्ट नहीं है, ऐसी दशा में भी वह अपने को असहाय नहीं समझती है, वह अपने को दुःखिनी नहीं समझती है। कुछ दूर आगे बढ़ने पर रास्तेके लोगोंको यह खबर लगी कि मीराबाई वृन्दावन जा रही है, लोग उसके दर्शनोंके लिए आने लगे, जगह जगह उसका स्वागत होने लगा। बहुत लोग उसके साथ वृन्दावन जाने के लिए तैयार हो गये। मीरा अपने दल के साथ वृन्दावन पहुंची, उसने अपने आराध्यदेव का दर्शन किया, वह कृतार्थ हुई और वहीं रहने लगी।

मीरा की कीर्ति चारों ओर फैल गयी, दूर दूर के लोग मीरा के दर्शन के लिए, उसके उपदेश सुनने के लिए, मीरा के पास आने लगे।

मीराका अन्तिम जीवन तीर्थाटन में बीता, मीरा केवल भक्तिमती ही न थी, किन्तु वह अच्छी कवि थी, मैं नीचे मीरा की कुछ मनोहर कविताएं उद्धृत करता हूं, इनसे मीरा की अवस्था, उसके हृदय के भाव, उसकी भक्ति आदि का पता मिलेगा।

मीरा को जब अपनी आपत्ति आदि से बहुत कष्ट मिलने लगा तब उसने अपनी अवस्था लिखकर महात्मा तुलसीदास से पूछा कि मुझे ऐसी दशामें क्या करना चाहिये? वह पत्र कविता में था।

श्रीतुलसी सुखनिधान दुखहरन गुसाईं ।
बारहिंबार प्रनाम करूं अब हरो सोक-समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोंहि देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्ही गिरिधरलाल मिताई ।
सोतो अब छूटत नहिं क्यों हू लगी लगन बरिआई ॥
मेरे मात पिता के सम हो हरिभक्तन सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई ॥

तुलसीदास ने भी इस पत्र का उत्तर कविता में दिया था
ी मैं नीचे लिखता हूं ।

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरीसम यद्यपि परम सनेही ।
तज्यो, पिता प्रहलाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी ॥
बलिगुरुतज्यो, कन्तब्रजवनिता भये सब मंगलकारी ।
नाते नेह रामसों मनियत, सुहृद सुसेव्य जहांलों ॥
अंजन कहा आंखजो फूटै, बहुतक कहौं कहांलों ।
तुलसीसो सबभांति परमहित पूज्यप्रानते प्यारो ॥
जासो होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो ।

अब मीराबाईके कुछपद सुनिए, जो इनके भक्तिभावके उद
। उनपदों की भाषा राजपुतानी हिन्दी है, पर समझ
आजाती है ।

(१)

जगमें जीवणा थोड़ा, रामकृष्ण कहरे जंजार ।
मातापिता तो जन्मदियो है कर्मदियो करतार ।

कइरे खाइयो, कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार
दियालिया तेरेसंग चलेगा, और नहीं तेरीलार।
मीराके प्रभुगिरधर नागर भज उतरो भवपार॥

(२)

रामनाम रसपीजे मनुआ रामनाम रसपीजे।
तजकुसंग सतसंग बैठनित हरिचरचा गुणलीजे॥
कामक्रोध मदलोभ मोह कूं चित्तसे बाहर कीजे।
मीराके प्रभुगिरिधर नागर ताहिके रंगमें भींजे॥

(३)

माई म्हारीन बूझी बात।
पिंडमेंसे प्राणपापी निकस क्यूं नहिं जात,
रैन अंधेरी बिरहघेरी तारा गिणत निशि जात।
ले कटारी कंठ चीरूं करूंगी अपघात,
पाट न खोल्या मुखां न बोल्या सांझलग परभात।
अबोलनामें अवधबीती काहेकी कुशलात,
सुपनमें हरिदरस दीन्हों मैं न जान्यो हरिजात।
नैन हमारा उघड़िआया रही मन पछतात,
आवण आवण होय रह्योरे नहिं आवण की बात।
मीरा व्याकुल बिरहिनिरे बालज्यों बिललात।

(४)

घड़ीएक नहीं आवड़े तुम दरसन बिन मोय।
तुमहो मेरे प्राणजी कासों जीवन होय॥
धान न भावे नींद न आवे बिरह सतावे मोय।

घायलसी घूमत फिरूं रे मेरा दरद न जाणे कोय ॥
दिवसतो खाय गमायोरे रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झूरतारे नैण गमाई रोय ॥
जोमैं ऐसा जाणतीरे प्रीति किये दुःख होय ।
नगर ढंढोरा फेरतीरे प्रीतिकरो मत कोय ॥
पंथ निहारूं डगर बुहारूं ऊभीमारग जोय ।
मीराके प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलियां सुखहोय ॥

(५)

हेरी मैं तो प्रेम दिवाणी मेरा दरद न जाणे कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी किस विधि सोणा होय ॥
गगन मंडलपै सेज पिया की किसविधि मिलणा होय
घायलकी गति घायल जाने की जिन लाई होय ॥
जौहरीकी गति जौहरीजाने की जिन जौहर होय ।
दरदकी मारी बनबन डोलूं बैद मिल्या नहीं कोय ॥
मीराकी प्रभु पीरमिटेगी जब बैद संवलिया होय ।

(६)

बंसीवारो आयो हमारेदेश थारी सांवरी सूरतवाली बेर
आऊं आऊं कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक
गिणते गिणते घिसगयी उंगली घिसगई उंगलीकी रेख
मैं बैरागिनि आदिकी थांरे हमारे कदको सनेस ॥
बिनपाणी बिनसाबुन सांवरा हुई गई धुई सपेद ।
जोगिण हुई जंगलसब हेरूं तेरा नामन पाया भेस ॥
तेरी सूरतके कारणे धरलिया भगवा भेस ।

मोर मुकुट पीताम्बर सोहै घूंघरवाला केस।
मीराको प्रभुगिरिधर मिलगये दूनावढ़ा सनेस ॥

(७)

राममिलनरो घणो उमावो नित उठ जाऊं वाटड़िया।
दरसनविण मोंहि पल न सुहावै कलन पड़त है आंखड़ि
तलफ तलफके बहुदिन बीते पड़ी विरहकी फांसड़िया
अबतो बेगि दयाकर साहब मैं हूं तेरी दासड़िया ॥
नैण दुखी दरसण को तरसे नाभि न बैठे सांसड़िया।
रात दिवस यह आरत मेरे कब हरिदास पासड़ियां ॥
लगी लगन छूटण की नाहीं अब क्यों कीजे आंटड़ियां
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर पूरौ मनको आसड़ियां ॥

(८)

रमैया मैं तो थारे रंगराती,
औरों के पिय परदेश बसत हैं लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हृदे बसत है गूंज करूं दिन राती ॥
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुट मुट रमवा जाती।
झुट मुट में मोहि मोहन मिलिया खोल मिलूं गलवाटी
और सखी मद पी पी माती मैं बिन पियां मदमाती।
प्रेम भटी को मैं मद पीयो छकी फिरूं दिनराती ॥

(९)

पायोजी मैंने नाम रतनधन पायो,
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु कृपाकर अपनायो।
जनम जनम को पूंजी पाई जगमें सभी खवायो ॥

खरचै नहिं कोई चोर न लेवे दिन दिन बढ़त सवा
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तरआर
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर हरख हरख जस गा

(१०)

पिया हमारे नैणा आगे रह ज्यों जी,
नैणा आगे रहज्यो म्हाने भूल मत जाज्यो जी।
भौसागर में बही जात हूं वेग हमारी सुध लीज्यो
राणा जी भेजा विष का प्याला सो अमृत कर दी
मीराके प्रभु गिरिधर नागर मिलि बिछुरन मत की

(११)

स्वामी सब संसार के हो सांचे श्री भगवान,
स्थावर जंगम पावक पाणी धरती बीच समान।
सब में महिमा तेरी देखी कुदरत के कुरबान॥
सुदामा के दारिद खोये वारे की पहचान।
दो मुट्ठी तंडुलकी खाया दीन्हा द्रव्य महान॥
भारत में अर्जुन के आगे आप भये रथवान।
उनने अपने कुलको देखा छुट गयेतीर कमान॥
नाकोइ मारे नाकोइ मरता तेरा यह अज्ञान।
चेतन जाव तो अजर अमर है यह गीताको ज्ञान,
मुझपर तो प्रभु किरपाकीजै बन्दो अपनी जान।
मीरागिरिधर सरणातिहारी लगै चरणमें ध्यान॥

दाबाई मीराकी ननदका नाम था। इनदोनोंकी
में हुई है यह कविता मैं नीचे लिखता हूं

ने मीराका सांसारिक पदार्थोंके प्रति क्या भाव था उसका पता लगता है।

ऊदा—भाभी मीरा कुलने लगाई दाग।
ईडर गढ़का आयोजी ओलमा॥
मीरा—ऊदाबाई थारो हमारे नातो नाहीं।
बासो बस्या का आयो जी ओलमा॥
ऊदा—भाभी मीरा साधां का संग निवार।
सारो सहर थारी निन्दा करे॥
मीरा—बाई ऊदा करे तो पड्या झखमारो।
मन लागो रमता रामसूं॥
ऊदा—भाभी मीरा पहरोनी मोत्यांको हार।
गहनो पहनो रतन जड़ाव को॥
मीरा—बाई ऊदा छोड्यो मैं मोत्यां को हार।
गहणो तो पहनो सील सन्तोष को॥

ऊदा—भाभी मीरा औरां के आवेजी आछी रूढ़ी जान।
थारे आवे छे हरिजन पावणा॥

मीरा—बाई ऊदा चढ़ चौवारां झांक।
साधांकी मंडली लागे सुहावणी॥

ऊदा—भाभी मीरा लाजे लाजे गढ़ चित्तौड़।
राणा जी लाले गढ़रा रावजी॥

मीरा—बाई ऊदा तार्यो र्यो चित्तौड़।
राणा जी तार्या गढ़ का रावजी॥

ऊदा—भाभी मीरा लाजे लाजे थारा मायन बा
पीहर लाजे जी थारो मेड़तो ॥
मीरा—बाई ऊदा तार्‍या मैं तो मायन बाप ।
पीहर तार्‍यो जी मेड़तो ॥
ऊदा—भाभी मीरा राणा जो किधा छै थांपर
रतन कचोले विष घोलियो ॥
मीरा—बाई ऊदा घोल्यो तो घोलण दो ।
कर चरणामृत वाही मैं पीवस्यां ॥
ऊदा—भाभी मीरा देखतणाही मर जाय ।
यो विष कहिये बासक नाग को ॥
मीरा—बाई ऊदा नहीं म्हारे माय न बाप ।
अमर डाली धरती झेलिया ॥
ऊदा—भाभी मीरा राणा जी उभाछे थारे द्वार
पोथी मांगे छे थारां ज्ञान की ॥
मीरा—बाई ऊदा पोथी म्हारी खांडा की धार
ज्ञान निभावण राणो है नहीं ॥
ऊदा—भाभी मीरा राणाजी रो वचन न लोप ।
उन रूठ्या भीड़ी कोऊ नहीं ॥
मीरा—बाई ऊदा रमापति आवे म्हारे भीड़
अरज करूं छूँ तासूं बीनती ॥
ऊदा—थाने बरज बरज मैं हारी भाभी मानो
राणे रोस कियो थां ऊपर साधों मैं

कुलको दाग लगै छे भाभो निन्दा हो रही मारं
साधांरे संग बनबन भटको लाज गमाई सारी
बड़ा घरांथें जनम लियोछे नाचो देदे तारी
बर पायो हिंदवाणोसूरज थें काई मानधारी
मीरा गिरिधर साधसँग तज चलो हमारे लारं
–म्हारा सिरपर सालिगराम राणाजी म्हारो काईं
मीरासूं राणातो कहोरे सुण मीरा मेरी बात।
साधोंकी संगत छोड़देरे सखियां सब चकुवात॥
मीराना सुणयो कहोरे सुण राणाजी बात।
साध तो माई बाप हमारे सखियां क्यूं घबरात।
जहरका प्याला भेजियारे दीजो मीरा हाथ।
अमृत करके पीगयीरे भली करे दीनानाथ॥
मीरा प्याला पीगयीरे बोली दोऊ कर जोर।
मैं तो मारण की करी रे मेरो राखणहारो और॥
आधे जोहड़ कीच है रे आधे जोहड़ होज।
आधे मीरा एकली रे आधे राणारी फौज॥
काम क्रोध को डाल के रे सील लिये हथियार।
जीता मीरा एकली रे हारी राणा की धार॥
काच गिरीका चौतरा रे बैठे साध पचास।
जिनमें मीरा एसी दमके लखतारो में परकाश॥
टांड़ा जब वे लादिया रे वे भी दीन्हा जाण।
कुलको तारण अस्तरी रे चली है पुस्कर न्हाण॥

मीरा मात नहीं जगछानी ऊदाबाई समझो सुघर स

साधू मात पिता कुल मेरे सजन सनेही ज्ञानी ॥
सन्त चरनकी सरन रैन दिन सत्त कहतहूँ बानी ।
राणा ने समझायो आवो मैं तो बात न मानी ॥
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर संता हाथ बिकानी ।

ऊदा—भाभी बोलो बचन बिचारी,
साधों की संगत दुख भारी मानो बचन हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो पहिरे हार हुहारी॥
रतन जड़ित पहिरो आभूषण भोगो भोग अपारी ।
मीराजी थें चलो महल में थांने सोगन हमारी ॥

मीरा—भाव भगत भूषण सजे सील सन्तोष सिंगार ।
ओढ़ी चूनर प्रेमकी गिरधर जी भरतार ॥
ऊदाबाई मन समझ जावो अपने धाम ।
राज पाट भोगो तुम्ही हमें नतासूंकाम ॥

इन छन्दोंमें मीराकी कैसी स्थिति थी, उसको जीव
तनी कठिनाइयां उठानी पड़ीं, भक्तिमार्ग से उसको हटा
तना प्रयत्न किया गया, इन बातोंका भी पता लगता है ।

अब मैं मीरा के कुछ और भजन उद्धृत करना चाहता

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल,
मोहन मूरति सांवरि सूरति नैना बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजन्ती माल ॥
छुद्र घंटिका कटितट शोभित नूपुर शब्द रसाल ।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदायी भक्तबछल गोपाल ॥

राणाजी थे क्याने राखो मोंसू बैर।
राणाजी म्हाने असा लगत है ज्यू बिरछनमें केर।
मारु घर मेवाड़ मेड़तो त्याग दि थां गो सेहर॥
थांरे रुस्या राणा कुछ नहिं बिगड़े अब हरि कीन्ही
मीराके प्रभु गिरिधर नागर हठकर पीगयी जहर॥

करमगति टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचंद्रसे राजा नीच घर नीर भरे।
पांच पाण्डु अरु कुन्ती द्रोपति हाड हिमालय गं
यज्ञ किया बलि लेण इन्द्रासन सो पाताल धरे।
मीराके प्रभु गिरिधरनागर विषसे अमृत करे॥

मेरेतो एक रामनाम दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साध संग बैठबैठ लोकलाज खोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
प्रेमनीर सींच सींच विषबेल धोई॥
दधिमथ घृत काढ़ लियो डार दियो छोई।
राणा विषको प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अबतो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई।
मीरा राम लगण लागी होणी होय सो होई॥

लेतां लेतां रामनामरे लोकड़िया तो लाजे मरैं
हरिमन्दिर जाता पावलियारे दूखे फिरि आवे सा
झगड़ो थाय त्यां दौड़ीने आयरे मुकीने घरना काम

भांडभवैया गनिका नृत्यकरतां बेसी रहे चारे जाम
मीराके प्रभु गिरिधरनागर चरणकमल चितहामरे ।

मीरा मगन भई हरिके गुण गाय ।
सांप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गयी पाय
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवण लागी तो अमृत अंचाय ॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय ।
सांझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥
मीराके प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय ।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पै बलिजाय ॥

सीसोद्या राणो प्यालो म्हाने क्यूंरे पठायो ।
भली बुरी तो मैं नहिं कीन्ही, राणा क्यूं है रिसायो ॥
थाने म्हाने देह दिवी है ज्यारो हरिगुण गायो ।
कनक कटोरे ले विष घोल्यो दयाराम पंडो लायो ॥
अठी उठी तो मैं नहीं राणा जद यह ब्रह्मंड छायो ।
मेड़तिया घर जन्म लियो है मीरा नाम कहायो ॥
प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी खंभ फाड़ वेगि धायो ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर जनको बिरद बढ़ायो ।

न ऊपर लिखी कविताओं से मीरा के हृदय का ा है। मीरा संसार में गृहस्थी करने नहीं आयी थ द् भजन, आत्म कल्याण करने । पर स्त्रियोंके जीवनक ने सङ्कुचित करदिया था जिस कारण मीरा के

साध्वी, भक्तिमती देवी को भी लांछित होना पड़ा, कष्ट उठाना पड़ा। बात भी ठीक है, मनुष्यकी प्रकृतिही ऐसी है, वह अपना जो आदर्श चाहे वह मूर्खता की नींव परही क्यों नहो—निश्चित करलेता है, उसीको ठीक समझता है। यदि कोई ऐसा मनुष्य हुआ जिसका आदर्श भिन्न हुआ तो वह मनुष्य अपने से भिन्न आदर्श रखनेवाले के द्वारा अवश्य सताया जायगा, अवश्य अपमानित किया जायगा, यही आजतक हमलोग देखते आये हैं और इसी अपनी संकुचित बुद्धि पर मनुष्य अभिमान भी रखता है। लीला है मूर्खता की, विलास है अहङ्कार का।

(२)

कर्मवती बाईके 'जीवनकी घटनाएं' भी मीराके समान हैं। मीरा राजकुलकी कन्या थी, राजकुलकी बहू थी, पर कर्मवती एक साधारण गृहस्थकी कन्या थी। यह बड़ी भक्तिमती थी, इसका वृत्तान्त भक्तमाल में है।

दक्षिण प्रान्तके खाजल ग्राम निवासी परशुराम नामक ब्राह्मणकी यह कन्या थी। परशुराम राजपुरोहित था, इस कारण उसकी गृहस्थी सुखसे चली जाती थी। परशुरामकी कोई दूसरी सन्तति नहीं थी, केवल यही एक कन्या थी। इसलिए पिताने पुत्र समझकर कर्मवतीका लालन, पालन किया, उसकी शिक्षाकी व्यवस्थाकी। कर्मवतीने शास्त्रोंमें निपुणता प्राप्तकी, साथही इसने धार्मिक योग्यताभी पायी, इसके हृदयमें धर्मश्रद्धा स्थापित हुई।

कर्मवती बड़ी हुई, उसकी इच्छा न थी कि वह सांसारिक बन्धनों में फंसे, ब्याह आदिको वह बन्धन समझती थी पर पिता

की आज्ञा वह न टाल सकी, पिताकी इच्छाके सामने उसे झुकना पड़ा। उसने ब्याह किया।

कर्मवतीका ब्याह हो गया, और साथही उसके जीवनका पर्दा भी पलट गया। पतिके घरजाने पर कर्मवतीको अब वह स्वाधीनता न रही, अब वह अपनी इच्छाके अनुसार भजन, पूजन नहीं कर सकती थी। वह शास्त्रावलोकन नहीं कर सकती थी।

कर्मवतीका स्वामी पूरा संसारी था, वह कर्मवतीको अपने हृदयकी आराध्यदेवी बनाना चाहता था, वह कर्मवतीको सांसारिक सुखोंमें फांसना चाहता था, पर कर्मवतीको यह बात पसन्द न थी। वह आराध्य नहीं बनना चाहती थी, वह सांसारिक सुखोंमें अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहती थी। इस तरह पति, पत्नीमें अनबन हुआ। कर्मवतीके लिए पतिका घर जेलखानेके समान हुआ। कर्मवतीने सोचा कि जिस स्थानमें रहनेसे मैं अपने इष्ट देवका भजन न कर सकुं, अपने आत्म कल्याणके उपायोंका अनुष्ठान न कर सकूं, उस स्थानमें रहना अनुचित है। वह पतिके घरसे पिताके घर चली आयी, पर पिताको कन्याका यह आचरण अच्छा न लगा। पिता के रूखे आचरण देखकर उसने दूसरी जगह रहने का विचार किया। एक दिन वह पिताका घर भी छोड़कर चल पड़ी। वृन्दावन जाने के लिए वह घरसे निकली थी, पर वृन्दावन का रास्ता उसे मालूम नहीं। जिधर रास्ता मिला उसी ओर वह चल पड़ी।

कन्या के चलीजाने पर पिता को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपने राजा से यह बात कही राजा की आज्ञा से कर्मवती बाई

को ढूंढ़नेके लिए आदमी भेजे गये। कर्मवती अपनी धुन में चली जाती थी, उसे कुछ आहट मालूम हुई, उसने पीछे फिर कर देखा तो कुछ आदमी आते हुए दीख पड़े। कर्मवती ने समझा कि ये अवश्यही मुझे ढूंढ़ने के लिए आ रहे हैं, उसने छिपने का विचार किया, पर छिपे कहां? वहां पास कोई वृक्ष न थे, वह दौड़ी, थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर एक मरा हुआ ऊंट पड़ा मिला। गीध आदि ने उसका मांस खा लिया था, हड्डियों की ठठरी गुफा के समान पड़ी थी, कर्मवती उसी में जाकर छिप गयी, आदमी आगे निकल गये। कर्मवती के छिपने के ढंग से मालूम पड़ता है कि वह पिता और पति के यहां रहने से कितना ऊब गयी थी, वह उनसे कितनी घृणा करती थी! आदमियों के चलेजाने पर वह आगे बढ़ी। मार्ग में अनेक कष्ट भोगती हुई वह वृन्दावन पहुंची। वृन्दावन आकर उसने अपने को सुखी समझा। यहां उसके भजन, पूजन के विघ्न दूर हो गये, यहां वह निष्कण्टक होकर भगवान् की पूजा करने लगी।

राजा ने कर्मवती को ढूंढ़ने के लिए जिन आदमियों को भेजा था, वे लौट गये। उन्होंने जाकर कहा, कि हमलोगों ने बहुत ढूंढ़ा पर कहीं पता नहीं मिला। इस बात से कर्मवती का पिता परशुराम बहुत दुःखी हुआ। वह भी घर छोड़ कर देश विदेश में घूमने लगा, और अपनी कन्याको ढूंढ़ने लगा। घूमते घामते बहुत दिनोंके बाद परशुराम वृन्दावन पहुंचा। वृन्दावन में पहुंच कर उसने श्रीभगवान् से प्रार्थना की कि भगवन्! दया कीजिए, और एकबार कर्मवती को मिला दीजिए, भक्त भयहारी भगवान के चरणों में

दुःखी होकर शुद्ध चित्त से जो प्रार्थना की जाती है वह विफल नहीं होती। दूसरे ही दिन एक स्थान पर देखा कि कर्मवती ध्यान लगाये बैठी है, उसकी आंखों से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। पिता अपनी पुत्री को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। अपने निष्ठुर व्यवहारों के लिए क्षमा मांगने लगा। उसने कहा, बेटी! घर चलो, अब तुम्हारा पिता कभी तुमसे निठुर व्यवहार न करेगा। कर्मवती ने पिता को समझाबुझा कर बिदा किया।

परशुराम से जब राजा को मालूम हुआ कि कर्मवती वृन्दावन में है और उसने अच्छी अपनी आध्यात्मिक उन्नति करली है, तब वह भी वृन्दावन आया, और कर्मवती को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कर्मवती के बहुत मना करने पर भी कर्मवती के रहने के स्थान पर एक कुटी बनवा दी। वह टूटी कुटी आज भी वृन्दावन के यात्रियों को कर्मवती का परिचय बताती है। कर्मवती ने अपना शेष जीवन उसी कुटी में रहकर बिताया।

अन्तिम वक्तव्य।

जा भगीरथके साथ गङ्गा आयीं, उस समयके
देखनेवालोंने गङ्गाकी धाराका वर्णन किया, गङ्गाके
जलके गुणोंका वर्णन किया। उनके बादके पण्डितोंने
भी गङ्गाजल और गङ्गधारके गुण बतलाये हैं, उनका
वर्णन किया है। आज हमलोग भी गङ्गाजलके गुणका
रते हैं, उसकी धाराकी तीव्रता देख प्रसन्न होते हैं,
की कल्पनाएं करते हैं। पर प्राचीन वर्णनों और नवीन
ी भेद नहीं पड़ता, तीनों अवस्थाओंमें गङ्गाजल का गुण
ङ्गाकी धारा एक है। इसका यह अर्थ नहीं है, गङ्गा स्थिर
मालयकी पुत्री हिमालय के समान स्थिर है, अकड़ी हुई
नहीं, गङ्गा बड़े वेगोंसे बह रही है। जिस दिन ये भूतल
उसी दिनसे इनका चलना प्रारम्भ हुआ और आज तक
हैं। एक क्षणके लिये भी उनकी गति बन्द न हुई, एक
र भी उनका कलकल नाद बन्द नहीं हुआ। एक धारा
वह देखते देखते ही चली गयी. किसीको पता नहीं कि
े दूर गयी; दूसरी आयी, तीसरी आयी, पर इनमें भेद
ीं पड़ा। इसी लिए एक बच्चा भी देखतेही गङ्गाको
ता है

जातिभी गङ्गा है, उसका भी प्रवाह अनादिकालसे प्रारम्भ हुआ है, और वह आजतक जारी है। पर दुःख है जाति गङ्गाकी धारा समान नहीं देखी जाती। गतिमें भेद पड़नेसेही भेद नहीं पड़ता, शक्तिकी अधिकता और न्यूनता होजाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, पर रूप नहीं बदलना चाहिए। रूप बदलनेसे पहचान होना कठिन है; इसी कारण हमलोगोंका प्रयत्न होना चाहिए कि जाति गङ्गाका रूप बदलने न पावे। धाराएं आती हैं आवें, वे जाती हैं जावें, इसकी कुछ चिन्ता नहीं! पर ऐसा नहीं होना चाहिए कि एकबार दूधकी धारा आवे और दूसरीबार खून की। एक बार सुगन्धित धारा लोगों को प्रसन्न करती हुई निकल जाय और दूसरी बार जी उबानेवाली दुर्गन्धित धारा आवे। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा हो तो कौन पहचान सकेगा कि यह वही धारा है? जाति गङ्गाका ज्ञान लोगोंको कैसे होगा?

उस धाराका रूपरक्षाके लिए, उस जातिगङ्गाके स्वरूपको ठीक ठीक बनाये रखनेके लिए आवश्यकता है आदर्शकी रक्षाकी, आवश्यकता है सभ्यताके पालन की। आदर्श निश्चित होता है सभ्यताके अनुसार, आचार विचारोंके अनुसार और परिस्थितिके अनुसार। सभ्यता और आचार ये दो मुख्य हैं, विचार और परिस्थिति आयाजाया करते हैं, परिस्थिति बदलनेसे विचार बदलते हैं और विचार बदलनेसे परिस्थिति बदलती है। ये दोनों जातिगङ्गाकी धाराएं हैं। कभी जातिके हृदयमें वीरताके विचार उठते हैं और कभी शान्तिके। कभी वह अस्त्र, शस्त्रोंसे सज्जित होकर रणक्षेत्र की ओर बड़े वेगसे दौड़ती है और कभी एकान्तवास पसन्द करती

है। जब जैसी परिस्थिति होती है तब वैसा उसे करना पड़ता है, पर आचरण और सभ्यतामें भेद नहीं होना चाहिए। इनमें भेद होतेही जातिका स्वरूप बदल जाता है, उसका पहचानना कठिन हो जाता है।

हमारी जातिकी भी कोई सभ्यता है, उसकेभी आचरण हैं। हम इस स्थानपर इसका विचार नहीं कर सकते कि हमारी सभ्यता के क्या लक्षण हैं, हमारे आचरण कैसे होने चाहिए, क्योंकि इनबातोंके विचारके लिए यह स्थान नहीं है। पर इतना हमें अवश्य कहना है कि हमने अपनी सभ्यता और आदर्शको बदलने का प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया है। यह बात घातक है, कोईभी जाति ऐसे विचारोंसे स्थिर नहीं रह सकती।

हिन्दूजाति विचारोंमें सदा स्वाधीन रही है और उसे ऐसा रहना चाहिए, पर उसके आचरण स्वाधीन नहीं रहे हैं। आचरण की अस्वाधीनतासे मेरा मतलब आचरणकी उच्छृङ्खलतासे है। हिन्दूजातिके आचरण कभी उच्छृङ्खलताके नहीं हुए हैं। पश्चिमने विचारों की पराधीनता और आचरणों की उच्छृङ्खलता दिखायी, पर भारतने नहीं। गैलीलिओ, साक्रेटिज़ आदि स्वाधीन विचारवालोंका खून पश्चिमने किया, पर भारतने चार्वाक आदि नास्तिकों का भी स्वागत किया। स्वाधीन विचारवालोंके खूनके छींटे पश्चिमवाले अभीतक नहीं धोसके हैं, पर भारतको अभीतक वैसे कलङ्क नहीं लगे हैं। उसे वैसे कलङ्कोंका प्रक्षालन नहीं करना है, उसे स्वाधीन विचारवालोंकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं करना है।

पर दुःख है आज वही भारत अपना आदर्श बदलने जारहा है,

आज वह अपनी स्वाभाविक सभ्यता पर पालिश करने जारहा है। यह बात बुरी है, हमलोगोंको उसे रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। हमलोगों को उसे समझाना चाहिए कि विचार-स्वातन्त्र्य मत नष्ट करो, आदर्श मत बदलो, आचरणोंमें उच्छृङ्खलता मत घुसने दो। अपनी सभ्यताकी काया पलट मत करो।

हमलोग स्वाधीन विचारों को बुरा समझते हैं, बुरे आचरणों को बुरा नहीं। हमारे विचारोंके मार्गमें रुकावट डाली जाती है, आचरणोंके मार्गमें नहीं। हमारे स्वाधीन विचार नास्तिकताके समझे जाते हैं, पर बुरे आचरण पापके नहीं। हमको सोचने की सख्त मुमानियत है, पर करने की नहीं। यह बात बुरी है, इससे हमारी हानि हो रही है, हमारा स्वरूप बदल रहा है, और हम दिनोंदिन नाशकी ओर बढ़ रहे हैं।

आज हम स्त्रीशिक्षा के कट्टर विरोधी हैं, क्योंकि शिक्षा से स्त्रियों में स्वाधीन विचार उत्पन्न होगा, पर अशिक्षा से उत्पन्न होनेवाले बुरे आचरणों की हमें परवा नहीं, उधर हमारा ध्यान नहीं। हम पर्दा को कुसंस्कार समझते हैं, पर स्त्रियों पर तानेज़नी करते हमेही शर्म नहीं आती, हम अपनी अधमता छोड़ना नहीं चाहते। पर्दे से बुराइयां हैं पर उससे कहीं अधिक बुराइयां हैं स्त्रियों को अपनेही द्वारा अपमानित होने में। हम स्त्रियों को सब जगह घुमाना चाहते हैं, पर उन्हें आत्मरक्षा के योग्य नहीं बनाते। हम स्वयं शक्ति नहीं प्राप्त करते कि हम अपनी बहू, बेटियों पर तानेजनी करने वालों को दण्ड दें, उन्हें अपमानित करने वालों

को अपमानित करें। कहिए, यह सब क्या है ? इसे आप बुद्धिमानी समझते हैं ?

आवश्यकता है कि हम अपना ढंग बदलें। अनुकरण करने वाला योग्यता नहीं पासकता, वह बलवान् नहीं हो सकता, नकल करने के लिए सभ्यसंसार में स्थान नहीं। हमको अपनी वस्तु लेकर संसार के सामने उपस्थित होना चाहिए। मंगनी की वस्तुओं से जन-समाज में कोई आदर नहीं पासकता। स्त्रीशिक्षा की जो पद्धति हमने निश्चित की है, वह संकुचित है, उससे स्वाधीन विचार की योग्यता उत्पन्न नहीं होती, किन्तु उच्छृङ्खल आचरण की। वह हमारी नहीं है, किन्तु नकल की हुई है। इस पुस्तक के पढ़नेवाले देखें कि प्राचीन भारत में स्त्रियां कैसी थीं, उनके विचार कैसे थे, उन लोगों ने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए क्या किया और उन बातों से उस समय की स्त्री-शिक्षा की पद्धति का अनुमान करें। यही मेरी प्रार्थना है, अनुरोध है, निवेदन है।

हम प्राचीन आचरण चाहते हैं, सभ्यता चाहते हैं, आदर्श चाहते हैं, पर विचार नहीं। विचार हमारे होंगे। हम अपने नये विचारों से अपनी पुरानी सभ्यता, अपने आदर्श, पुष्ट करेंगे और पुराने आचरणों को ग्रहण करेंगे। यह इसलिए करेंगे कि ऐसा करने से हमारी जाति जीवित रहेगी, हमें संसार नकल करनेवाला न समझेगा।